फूल और पाषाण

[पुण्यपाल चरित्र]

मूल लेखक

स्वामी हिम्मतमलजी मह

संशोधक-संयोजक

मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी महाराज

रूपान्तरकार

श्री सुकन मुनि

प्रकाशक

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

ब्यावर—जोधपुर

श्री मरुधर केसरी साहित्य माला का पुष्प : ४६

फूल और पाषाण

[पुण्यपाल चरित]

प्रतियां ११००

मुद्रण :
वि० सं २०४७ श्रावण,
सन् १९९० ई , अगस्त
वीर निर्वाण संवत् २५१७

अर्थ सौजन्य :
श्रीमान्
ताराचन्दजी बम्ब,
कुरडायां (मारवाड़, राज)

प्रकाशक व प्राप्ति स्थान:
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर [राज०]

मुद्रक :
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

मूल्य : 10 रुपया

॥ श्री मरुधर केसरी गुरुभ्योनम ॥

उदार सहयोगी

"फूल और पाषाण" के इस संस्करण के प्रकाशन में स्व श्री ताराचन्दजी बम्ब के सुपुत्र, उदार हृदयी, एव श्रमणानुर्य, पूज्य प्रवर्तक मरुधर केसरी १००८ श्री मिश्रीमलजी म सा के अनन्य भक्त सर्वश्री जवरचन्दजी, धर्मीचन्दजी, गौतम चदजी, महावीरचंदजी उगमचन्दजी बम्ब ने अत्यन्त उदारता, श्रद्धा, भक्ति एवं यश भावना से निर्लिप्त रह कर अर्थ सहयोग किया है। आप मारवाड़ में कुरडाया निवासी है। कुरडाया स्व दादा गुरुदेव श्री बुद्धमलजी म सा. की स्वर्ग स्थली है।

आपकी प्रबल भावना थी कि गुरुदेव श्री जी के सत् साहित्य के प्रकाशन का शुभावसर प्राप्त हो जिससे अपने हृदयगत भावों को जानते हुए कुछ अंशों में गुरुभक्ति का परिचय देकर साहित्य सेवा का लाभ ले सकें।

श्रमणसंघीय सलाहकार उप-प्रवर्तक श्री सुकनमलजी म सा. ने इस साहित्य सुश्रुषा का शुभ अवसर प्रदान किया तदर्थ आप पूज्य महाराजश्री के आभारी हैं।

गुरुभक्त बम्ब परिवार दक्षिण भारत के रायचूर जिले के सिंधनूर व गंगावती नगर मे व्यवसाय रत हैं। सहयोग के लिये शतश धन्यवाद।

—मंत्री
श्री मरुधर केसरी,
साहित्य प्रकाशन समिति
जोधपुर-ब्यावर

फर्म का पता

☐ गौतम ट्रेडर्स
मेन रोड, सिन्धनूर, जिला रायचूर (कर्नाटक)

☐ संजय ट्रेडिंग कम्पनी
सी० एम० बी० रोड,
पो० गंगावती, जि० रायचूर (कर्नाटक)



स्व० श्री ताराचन्दजी बम्ब सिन्धनूर

प्रकाशकीय

श्रमणसूर्य प्रवर्तक गुरुदेवश्री स्व मिश्रीमलजी महाराज आज के स्थानकवासी जैन समाज में भीष्म पितामह माने जा सकते हैं। आपका तेजस्वी ओजस्वी वर्चस्व सम्पन्न व्यक्तित्व न केवल स्थानकवासी समाज पर किन्तु आस-पास के सम्पूर्ण जैन-अजैन क्षेत्र में सिर चढ़कर बोलने वाला आध्यात्मिक जादू था। आप जितने करुणाशील, दयालु व परोपकार-परायण थे, उतने ही समाज सुधारक, संघ संगठन और बुराइयों के प्रति कठोर क्रान्तिकारी भी थे। ९० वर्ष की आयु में भी गुरुदेवश्री की सिंह गर्जना समाज में नव चेतना फूंक रही थी। शिक्षा, सेवा, स्वधर्मि-सहायता, चिकित्सा, मूकजीव-अनुकम्पा आदि दिशा में आपकी प्रेरणा से आज भी प्रतिवर्ष लाखों रुपये की धनराशि का सद्व्यय होता है।

अन्य क्षेत्रों की भांति साहित्य-श्री का क्षेत्र भी आपश्री के कृतित्व व प्रेरणा से समृद्ध हुआ। आपश्री स्वयं संस्कृत-प्राकृत-फारसी-राजस्थानी के उद्भट विद्वान्, कवि, ओजस्वी वक्ता थे। आपश्री के साहित्य में भी सदाचार, संगठन, कर्तव्य-पालन, पुरुषार्थ और परोपकार की धारा प्रवाहित हुई।

प्रस्तुत रचना आपश्री की काव्य-कुशलता व साहित्यिक प्रतिभा का जीवंत प्रमाण है। गुरुदेव के सेवाभावी सुशिष्य श्री सुकन मुनि ने इसे हिन्दी में रूपान्तरित किया है। सम्पादनश्रम श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना ने किया है। आर्थिक सहयोग स्व० श्रीमान् ताराचन्दजी बम्ब की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्रीमान् पदमचन्दजी, [illegible]मीचन्दजी गौतमचन्दजी महावीरचन्दजी एवं उगमचन्दजी बम्ब ने प्रदान किया है।

सभी के प्रति सादर कृतज्ञ हैं हम।

—मंत्री

सम्पादकीय

भगवान् महावीर ने फरमाया है—

> जं जारिसं पुव्वमकासि कम्मं
> तमेव आगच्छति संपराए

प्राणी पूर्व जन्म में जैसा (शुभ या अशुभ) कर्म करके आता है, इस जन्म में वैसा ही (मधुर या कटु) फल प्राप्त करता है।

विश्व के समस्त आस्तिक दर्शनों का, सदाचार और नीति के नियमों का मूल आधार यही कर्म सिद्धान्त है। प्रत्येक धर्म व दर्शन ने किसी न किसी रूप में कर्म की सत्ता, कर्म का अटल नियम स्वीका किया है, और कर्म तथा कर्मफल के आधार पर ही नीति, धर्म ए सदाचार के नियम स्थिर हुए हैं। 'बुरे कर्म का बुरा फल और अच् कर्म का अच्छा फल' यह सिद्धान्त जहाँ मनुष्य को बुराई, पाप व अन्या करने से बचाता है, रोकता है और भय भी दिखाता है, वहीं दान परोपकार, सेवा व सज्जनता आदि शुभ कर्म की प्रेरणा व प्रोत्साह भी देता है।

काशित हुआ है वह तो शायद उनका अल्पांश मात्र है, विशाल साहित्य तो अभी तक भण्डारो मे ताडपत्रो व भोजपत्रो मे लिपटा हुआ ही है।

प्रस्तुत कथानक—पुण्यपाल चरित्र भी एक अप्रकाशित सुन्दर राजस्थानी कृति का जीर्णोद्धार व नव रूपान्तर ही है, जो हिन्दी भाषा मे पहली बार पाठको के समक्ष प्रस्तुत है।

ऐसे 'पुण्यपाल' चरित्र पर संस्कृत भाषा मे २-३ रचनाओं का उल्लेख मिलता है पर कृतियां अब तक प्रकाशित नही हुई है। गुजराती मे भी जिनकुशल सूरि की 'गुणसुन्दरी' चतुष्पदी के पुण्यपाल राजा की कथा है, अन्य गुजराती रचनाओं के विषय मे भी पता है, पर प्राय अब तक हस्तलिखित ही है।

प्रस्तुत पुण्यपाल चरित्र के रचयिता है जैनाचार्य पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज के सम्प्रदायानुयायी स्वामी श्री हिम्मतमलजी म० सा०। स्वामी श्री हिम्मतमलजी म० का विशेष परिचय तो प्राप्त नही होता है पर गुरुदेव श्री मिश्रीमलजी म० सा० के अथक प्रयत्नो से उनकी कुछ उत्तम कृतियां अभी प्रकाश मे आयी हैं। गुरुदेवश्री ने प्राचीन भण्डारो मे से खोजकर हस्तलिखित प्रतियां निकाली, फिर उनका संशोधन किया, सुन्दर सम्पादन किया और श्री हिम्मतमलजी म० सा० की ३-४ कृतियो का प्रकाशन भी हुआ—'हिम्मत विलास' नाम से।

स्वामीजी श्री हिम्मतमलजी म० सा० का जन्मस्थान का निश्चित पता नही चलता, पर आपके पिताश्री पानीरामजी नौपाल का लघुवय मे ही स्वर्गवास हो जाने से माताश्री रूपीबाई अपने पीहर बीणला (मारवाड—सोजत परगना) मे रो रहती थी। श्री रूपीबाई स्वयं भी बहुत धार्मिक संस्कारो की वैराग्यवती थी। आपने अपनी आशाओं का केन्द्र—हिम्मत को लघुवय मे ही विद्याध्ययन कराना

और पूज्य स्वामीजी श्री धर्मचन्दजी म० सा० की आज्ञानुवर्ती सा
व श्राविकाओ की देखरेख मे रहकर स्वय ने दीक्षा ग्रहण कर ल
बालक हिम्मतमलजी ने भी वि० सं० १९२६ चैत्र शुक्ला १२
पूज्य स्वामीजी म० के चरणो मे जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण करली। आ
प्रखर प्रतिभा के बल पर आपश्री ने जैनशास्त्र व काव्य ग्रन्थों
अच्छा अध्ययन किया और अनेक काव्य कृतियां रची। आपकी
रचनाएँ अब तक पूज्यश्री रघुनाथ जैन पुस्तकालय, सोजत सिटी
प्रकाशित हो चुकी है।

'पुण्यपाल' चरित्र मनुष्य के शुभाशुभ कार्यों का एक चमत्
निदर्शन है। पूर्वकृत अशुभ कर्मों के कारण प्राणी विपत्तियों में प
है पर पुन शुभ कर्म का उदय होने से विपत्ति भी सम्पत्तियाँ
बन जाती है। कष्टो मे भी कीर्ति और वैभव प्राप्त होने लगता
[illegible] पुण्यपाल तथा उसकी चार पत्नियाँ गुणसुन्दरी, सौभाग्यसुं
आदि का वियोग व मिलन बड़ा ही आश्चर्यकारी व रोमाचक
कवि की कुशल प्रतिभा ने बीच-बीच मे कुछ रोचक अवान्तर कथ
के द्वारा घटना प्रसग जोड दिये है जिससे कथा की रसवृद्धि तो हु
साथ ही विभिन्न प्रेरणा व शिक्षाएँ भी व्यक्त हो रही है।

मेरे श्रद्धेय गुरुदेव श्री मरुधर केसरीजी म० सा० ने इस
के संशोधन सम्पादन आदि मे बहुत ही श्रम कर इसे सुन्दरता, प्र
प्रदान की है। और सुगम बनाने की दृष्टि से इसी का हिन्दी रूपा
मैंने प्रस्तुत किया है। आशा है पाठक इससे जीवन विकास
प्रेरणाएँ लेंगे।

[illegible]

—सुकन मु

फूल और पाषाण

1

वत्स देश की जनता, वहाँ के नर-नारी तो इसका गर्व करते ही
कि हम इस देश के वासी है, वहाँ के पशु-पक्षी भी बहुत सुखी
। इस देश के वनों को भी प्रकृति ने सब सुविधाओं से भर दिया
। दूसरे, इस पूरे देश मे जैनधर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार था।
ोई भी आखेटक या मन-मौजी वहाँ के वन्य-पशुओं को पीड़ा देने
ाला नही था। अत. वहाँ के वन्य-पशु तपोवन के पशुओं की तरह
च्छन्द—निर्भय विचरण करते थे। उर्वरा भूमि, लहलहाते खेतों,
ारु गायों और धन-धान्य से समृद्ध इस वत्स देश की राजधानी
, विराटनगर।

विराटनगर अपने नाम के अनुरूप विशाल नगर था। ऊँचे-
चे भवन, साफ-सुथरे और चौड़े राजमार्ग तथा सजावट से भरे
ाजारों के इस नगर मे अधिकतर सेठ-व्यापारी ही रहते थे। यहाँ
राजा था जितशत्रु, जो प्रजावत्सल, धीर-वीर और पराक्रमी था।
जा जितशत्रु का शासन सुशासन था और इसके सुशासन में हाथ
टाने वाला दाहिना हाथ था, मन्त्री सुबुद्धि।

महामात्य सुबुद्धि बहुत ही दूरदर्शी, बुद्धिमान, कुशल न्याय-
द् और देशभक्त था। राज्य का ही नहीं राज-परिवार का भी
ई काम राजा जितशत्रु मन्त्री सुबुद्धि की सलाह के बिना नहीं

करता था। मंत्री सुबुद्धि राजा का ही नहीं, विराटनगर के जनता का चहेता और उनका स्वजन जैसा था।

सुबुद्धि मंत्री की पत्नी थी, कमलावती। मृदुभाषिणी कमलावती की गोद अभी तक सूनी थी। लेकिन इसका उसे विशेष गम नहीं था, क्योंकि जिनको धर्म का सहारा होता है, उनको जीवन कोई अभाव नहीं खटकते।

पुत्र के सम्बन्ध में एक दिन पति-पत्नी में बात चल पड़ी एक चिड़िया अपने बच्चे को दाना खिला रही थी। उसे कमलावती बोली—

"स्वामी! संतान का मोह पशु-पक्षियों को भी होता हम तो फिर भी मानव हैं।"

"तुम्हारा अभिप्राय मैं समझ गया प्रिये!" मंत्री सुबुद्धि कहा—"संतान होने के बाद तो पशु-पक्षी अपनी संतान को चाहते हैं, पर संतान होने से पहले उनमें संतान के प्रति किसी प्र की इच्छा नहीं होती। मनुष्य तो संतान के लिए अनेकों उ भी करता है, पर पशु-पक्षी कौन-सा देवाराधन या पुत्रेष्टि करते हैं?"

"अच्छा [illegible] बनाना।" कमलावती कुछ मुस्कराई "क्या आपको पुत्र की इच्छा नहीं? क्या आपका मन ऐसा चाहता कि हम दोनों के [illegible] कोई बालक हमारे घ खेले? आखिर तो हम गृहस्थ हैं। स्वामी! वैसे मैं भ समझती हूँ कि भाग्य के बिना कुछ नहीं मिलता। पर आ [illegible]"

"प्रिये! संसार में सुखी रहने के लिए दो बातें चाहिए।"

अदृश्य को मानना। दृश्य क्या है ? दृश्य है यह संसार जो दिखाई देता है और अदृश्य है धर्म जो दिखाई नहीं देता।

"प्रिये ! दिखाई देने वाली चीज जानी जाती है और न दिखाई देने वाली चीज मानी जाती है। जब हम संसार को जान लेंगे तो उसका मूल्य कम हो जाएगा और धर्म के प्रति आदर बढ़ जाएगा।

"प्रिये ! धर्म को मानने के बाद दिमाग में धर्म का सहारा और दिल में धर्म का प्यार रहेगा। फिर संसार का प्यार हट जाएगा। संतान संसार है। मैं तो यह मानता हूँ कि संतान हो तो उसके प्रति अपना कर्तव्य करे और न हो तो परेशान न हो।"

कमलावती चुप हो गई। उसे कुछ तसल्ली हो गई थी, क्योंकि वह धर्मनिष्ठ नारी थी। कभी-कभी उसके मन में संतान की लालसा जागती अवश्य थी, जो पति के साथ बातचीत करने से शमित हो जाती थी।

संतान की आशा से विरत रहकर पति-पत्नी जीवन बिताते थे। मंत्री सुबुद्धि और मंत्री-पत्नी कमलावती इस अभाव की पूर्ति अपने से छोटों पर वात्सल्य लुटाकर करते थे। लेकिन एक दिन वह भी आया, जब इन दोनों के पुण्यों ने करवट बदली। एक रात कमलावती कमलों से भरे सरोवर का स्वप्न देखकर उठी और पति को बताया कि स्वामी ! आज तो मैंने बड़ा अच्छा सपना देखा है। लाल-लाल कमलों से भरा एक सरोवर रात मैंने देखा है।

"कमल पुण्यों के प्रतीक हैं।" मंत्री ने कहा—"जैसे कमल की जड़ कीचड़ में होती है, वैसे ही पुण्यों की जड़ भी बंधन में होती है, क्योंकि आखिर पुण्य भी तो कर्म ही है। पुण्य शुभकर्म है और ये सुखों के—संसारी सुखों के बंधन में बाँधते हैं।"

"आप तो पाप-पुण्य की व्याख्या करने लगे।" कुछ

उतावलापन छिपाते हुए कमलावती ने कहा—"मैं तो यह जा[illegible] चाहती हूँ कि इस स्वप्न का फल क्या है।"

"यही तो मैं बता रहा था।" मंत्री बोला—"पुण्यों के [illegible] एक पुत्र की माता तुम बनोगी। जैसे सरोवर कमलों से भरा [illegible] ऐसे ही हमारा पुत्र भी पुण्यों से भरा होकर अवतीर्ण होगा।"

"पुण्यपाल!" कमलावती के मुँह से निकला—"मैं [illegible] पुत्र का नाम पुण्यपाल रखूँगी।"

मंत्री ने प्रसंग बदला—

"आज बातों में कुछ देर हो गई। राजसभा आज ज[illegible] पहुँचना है। आज तक राजा इसीलिए खुश है कि मैं समय [illegible] पहुँचता हूँ। वरना तो उसे उल्टा पड़ते देर नहीं लगती।"

"जो आपको अपने पुण्यों का भरोसा नहीं, जो राजा से ड[illegible] डरते हैं।" कमलावती बोली—"राजा आप पर कोई अहसान [illegible] करता। वह आपकी बुद्धि और सूझ-बूझ का फल ही तो आ[illegible] देता है।"

"यह तो ठीक है प्रिये!" मंत्री ने कहा—"सोने को यदि [illegible] [illegible] जाना पड़ जाता है और माजने-धोने से फि[illegible] भी चमकने लगती है। यदि मैं मन लगाकर राजसेवा न करूँ [illegible] फिर राजा का [illegible], [illegible] क्या भरोसा? [illegible] [illegible] मैं मंत्री बना [illegible] हूँ, पर मंत्री बने र[illegible] बुद्धि और चतुराई की बात है।"

[illegible] फिर कुछ नहीं बोली। पति-पत्नी—दोनों नि[illegible] [illegible]। [illegible] से निबट के मंत्री राजसभा च[illegible] गया।

[illegible] अभी सभा में नहीं आये थे। मंत्री स[illegible]

राजपुरोहित, नगरसेठ आदि पहले ही आ गये थे। सभी अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे। महामन्त्री सुबुद्धि का आसन राजा के दाहिनी ओर राजसिंहासन से कुछ नीचा था। कुछ ही देर बीती कि महाराज जितशत्रु सभा में पधारे। सभी उनके स्वागत में खड़े हो गये। राजपुरोहित ने स्वस्ति मंत्र पढ़े, तब राजा ने आसन ग्रहण किया। चांवरधारिणी चँवर ढोरने लगी। चारण ने विरद बखाना—

"वत्स देश के प्राण! विराटनगरमुकुट महाराज जितशत्रु के पूर्वजों के यश से धरती का कोना-कोना महक रहा है। महाराज जितशत्रु अपने पूर्वजों की परम्परा का पालन करते हुए हम सबके भाग्य-विधाता बने हैं। वे जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं, उसे सुखों में झुला देते हैं और जिस पर आपकी दृष्टि टेढ़ी होती है, वह धूल चाटने लगता है।"

इतना कह चारण ने जोर-जोर से 'महाराज जितशत्रु की, विराटनरेश जितशत्रु की' आवाज ऊँची की और पूरी सभा ने 'जय-जयकार' का उद्घोष किया।

चारण से अपना विरद सुनकर राजा के भीतर अहंकार जगा कि मैं मनुष्यों का भाग्य-विधाता हूँ। लेकिन वाणी में विनम्रता आई। अहंकार को छिपाने के लिए वाणी का सहारा लिया ही जाता है। राजा जितशत्रु ने भी सकुचित होकर कहा—

"हमारे देश में आज जो सुख-समृद्धि है, उसका श्रेय मेरे बुद्धिमान मन्त्रियों, रणबांकुरे सैनिकों और कुबेर से धनी श्रेष्ठियों को है। आप सबके सहयोग के बिना मैं क्या कर सकता हूँ?"

जिस दिन कोई विशेष वाद नहीं होता था उस दिन राजा जितशत्रु सभा में बैठकर विभिन्न प्रसंगों पर बातें किया करते थे। धर्म-कर्म, पाप-पुण्य, काव्य, पहेलियाँ आदि विषयों पर चर्चा हुआ करती थी। आज राजा जितशत्रु ने सभा के मध्य एक प्रश्न रखा। उसने कहा—

"हमारे धर्मशास्त्रों मे ऐसा लिखा है कि शुभाशुभ कर्म का फल भोगना अनिवार्य है। बुरे कर्मों का फल हमे दु ख के रूप भोगना पडता है। क्या यह भी सभव है कि हमे दु ख न भोगना पडे ?"

क्षणभर सभा मे सन्नाटा रहा। फिर राजपुरोहित ने कहा–

"धर्मशास्त्रो की बात प्रत्यक्ष देखने मे भी आती है। कोई अधा है तो कोई लूला-लंगडा। कोई राजा है तो कोई लकडहारा ये सब अपने कर्मों का फल भोगते दीखते है। अत कर्मों के फल का भोगना अनिवार्य है।"

सभी ने राजपुरोहित के इस कथन का समर्थन किया। लेकिन मत्री सुबुद्धि को यह बात पूरी तरह नही जॅची। उसने कहा—

"पृथ्वीनाथ ! कर्मों का फल भोगना तो अनिवार्य है, लेकिन दु खो का भोगना अनिवार्य नही है। एक स्थिति ऐसी भी आती है जब भोक्ता को सुख-दु ख प्रभावित नही करते। यह स्थिति धर्म के सहारे आती है। धर्म को पकडने वाला व्यक्ति समता-रस का पान करने लगता है। तब कोई भी परिस्थिति उसे दु ख से दु खी तथा सुख मे सुखी नही कर पाती।"

आज पूरा संसार इस प्रयत्न मे तो लगा है कि दुःख मिटे। लेकिन दुराशा और दुराशा से उत्पन्न दोष को नही मिटाता।

"पृथ्वीनाथ! बाहर की परिस्थितियो से दुःख-सुख का सम्बन्ध जोडना दुराशा है। छोटा बच्चा खिलौना पाकर सुखी होता है और खिलौना टूट जाने पर रोता है। स्पष्ट ही बालक अपने सुख-दुःख का सम्बन्ध बाहर, यानी खिलौने से जोडता है। वही बच्चा जब बडा, यानी समझदार हो जाता है तो खिलौने के प्रति आकृष्ट नही होता और खिलौना टूट जाने पर दुःखी नही होता।

"पृथ्वीनाथ! इसी तरह अज्ञानी जन ही सुख का सम्बन्ध धन से जोडते है। इसका व्यावहारिक पहलू यह है कि पूर्व अशुभ कर्मों के प्रभाव से कोई मनुष्य निर्धन अथवा कगाल तो हो सकता है, पर यदि वह धर्म का सहारा पकडेगा तो उसको समझ मे यह आ जाएगा कि सुख का सम्बन्ध धन से नही है। तब वह समता-रस मे डूबा रहकर टूटी खाट पर भी आनन्द मे सोयेगा। रूखा-सूखा खाकर भी तृप्ति का अनुभव करेगा। अतः बुरे कर्मों का फल गरीबी आदि तो अनिवार्य है, पर दुःखी रहना अनिवार्य नही है।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि दुःख होते तो है, पर धर्म-निष्ठ को व्यापते नही है?" राजा ने कहा—"लेकिन ये बातें सबकी समझ मे आयें कैसे?"

"धर्म-श्रवण से।" मत्री ने कहा—"मेरा निवेदन है कि जिस तरह हमारे विराटनगर मे स्थान-स्थान पर उपाश्रय है, उसी तरह पूरे वत्स देश मे अन्यान्य उपाश्रय अथवा स्थानक बनवाये जाएँ। इसके साथ ही घूम-घूमकर जैन मुनियो से प्रार्थना की जाए कि वे अपने विहार-क्रम मे वत्स देश मे अधिक-से-अधिक आयें और हमारी प्रजा को धर्म का मर्म समझाएँ, ताकि यहाँ के लोग समता-रस मे निमग्न रह सकें।"

राजा जितशत्रु को मन्त्री का यह प्रस्ताव बहुत पसन्द

आया। इसी समय वत्स देश के अनेक नगरों, पुरों और ग्रामों
उपाश्रयों के निर्माण की योजना बनी। काफी समय योजना [illegible]
में बीता। यथासमय सभा विसर्जित हुई और मन्त्री सुबुद्धि [illegible]
मन्त्रि-भवन पर पहुँचा। कमलावती ने मुस्कराकर पति का स्वागत
किया और जब मंत्री निश्चिन्त होकर बैठा तो कमलावती बोली—

"आज आप जल्दी में थे। सवेरे की चर्चा अधूरी रह गई। आपने कमलों को पुण्यों का प्रतीक बताया था। तो क्या ···?"

"आगे की बात मैं कहूँगा।" मंत्री बोला—"कोई भी जी[illegible] नितान्त पुण्यात्मा नहीं होता और न पूर्ण पापी ही होता है। सर[illegible] वर में सबसे ऊपर उठे हुए कमल होते हैं तो काई भी होती है। तुमने जो स्वप्न देखा है, उसका प्रतीकार्थ यही है कि हमारे यहाँ [illegible] जीव पुत्र-रूप में आयेगा वह पुण्यों की पोट लेकर आयेगा, पर थो[illegible] बहुत कुकर्मों का बंध भी उसके साथ होगा।

"प्रिये! मानव-जन्म पाप-पुण्य—दोनों तरह के कर्मों को [illegible] करके मुक्त होने के लिए होता है। शुभकर्म अथवा पुण्य भी [illegible] बन्धन है। भगवान् महावीर ने इसीलिए तो राज-वैभव को ठोकर मार दी और समत्व का मार्ग अपनाया। आज वे तीर्थंकरस्वरूप [illegible] महावीर ही तो हमारे आदर्श हैं।"

[illegible] कमलावती सन्तुष्ट हो गयी। कुछ ही दिन बाद उसे मालूम हो गया कि वह गर्भवती है। [illegible] गर्भ [illegible] कमलावती ने भरपूर दान दिया [illegible] भी प्रस[illegible] पानी के शुभ दोहदों [illegible] कमलावती [illegible] भी कर दिया था। [illegible]

2

आशा के फल का दिन आया। मंत्री के घर बेटा जन्मा—कमलावती पुत्रवती बनी। राजा जितशत्रु ने मन्त्री सुबुद्धि के घर बधाई भेजी। मन्त्रि-पुत्र का जन्मोत्सव ऐसा मनाया गया, मानो युवराज का जन्मोत्सव हो। विराटनगर में हर्ष का सागर हिलोरें मारने लगा।

मन्त्रि-पुत्र का रूप मोहित करने वाला था। बालरवि की सी देह-कान्ति। मानो स्वर्ण और सिन्दूर का मिश्रण देह से पुता हो। अनियारे और कमल से नेत्र। बाल काले और घुंघराले। ओठ पतले-पतले और पद्मराग से बने लगते थे। माथा अष्टमी के चन्द्र सा था।

ग्यारह दिन बाद बारहवां दिन नामकरण का दिन था। जातक का नाम पुण्यपाल रखा गया। यह नाम कमलावती के मन का पूर्व-निश्चित नाम था और मन्त्री द्वारा बताये गये स्वप्न-फल का इंगित भी था। पुण्यपाल का लालन-पालन पांच धायों को सौंपा गया। एक स्नान कराने के लिए मज्जनधात्री थी। दूसरी दूध पिलाने वाली क्षीरधात्री। तीसरी लोरी गाकर सुलाने वाली शयनधात्री थी। चौथी अंक में लेकर खिलाने वाली थी—अंकधात्री और पांचवीं खिलौनों से बहलाने वाली क्रीड़ाधात्री थी। लेकिन पांचों धायों के सभी गुण एक अकेली कमलावती में थे। कमलावती माता थी।

धायें कितनी ही हो, पर शिशु के लिए माता से बड़ा सहारा क
होता है ?

पुण्यपाल हाथों-हाथ खेलता हुआ बढ़ने लगा । बढ़ते-ब वह तीन साल का हो गया । अब वह तोतली वाणी में नवकार म का पाठ भी करता था । माता कमलावती ने बचपन से ही ध संस्कार देना शुरू कर दिया । पुण्यपाल जब घर के आँग चलता तो इसका बड़ा ख्याल रखता था कि कोई चींटी न जाए । एक दिन भूल से एक चींटी उसके पैरों से दबकर मर गई तीनवर्षीय बालक पुण्यपाल ने पूरे दिन व्रत रखा । तब म कमलावती ने पति से कहा था—

"मैं तो इसका नाम धर्मपाल रखती तो ज्यादा अच्छा होता

मंत्री बोले थे—

"प्रिये ! पुण्य से ही धर्म के संस्कार बनते हैं । जो प पुण्यात्मा बनता है, वही बाद में धर्मात्मा बनता है ।

"प्रिये ! इसे अब राजसभा में जाया करूँगा । महार जितशत्रु इसकी याद करते थे । जानती हो, उन्होंने इसके बारे क्या कहा ?"

"क्या कहा ?" कमलावती ने पूछा—"सो यह बिना देखे [illegible] क्या ?"

मंत्री कहने लगे—

"प्रिये ! महाराज जितशत्रु ने कहा—मंत्री ! जानते नहीं [illegible] । हम तुम्हारे पुत्र पुण्यपाल को अप [illegible] । वह सिंहासन के [illegible] । हमारे कोई पुत्र नहीं है तो अब इसे अपने उत्तराधिका [illegible] ।

"प्रिये ! मैंने राजा से कहा कि पुण्यपाल के ऐसे भाग्य कहाँ जो वह राजा बने तो मेरे इस कथन पर राजा का अहंकार फुत्कार कर उठा। राजा ने कहा—इसमें पुण्यपाल का भाग्य क्या करेगा ? यह तो हमारी इच्छा की बात है। हम जिसे चाहे उसे राजा बना दें। खैर, यह तो आगे की बात है। तुम अपने पुत्र को राजसभा में लाया करो।"

"तो तुम कुछ नही बोले ?" कमलावती ने कहा—"कह देते कि पुण्यपाल आखिर पुण्यपाल है। यदि वह राजा बनेगा तो अपने पुण्यों से बनेगा, किसी के बनाये नही बनेगा।"

"व्यर्थ ही राजा को रुष्ट कर देता ?" मंत्री ने कहा—"राजा कुछ भी कहे तो कहने से क्या होता है। राजा-रंक तो पुण्य या पाप से ही बना जाता है, इसे जानता कौन नही ? पर मैं कुछ कहता तो राजा तनिक देर में उल्टा पड़ जाता। खैर, अब तुम पुण्यपाल को तैयार कर दो।"

पुण्यपाल ने सिर पर पीली गोल टोपी पहनी, जो रत्नों से जड़ी थी। टोपी के किनारे से थोड़े-थोड़े बाल निकले हुए थे। माथे पर टीका था और ओठों पर मुस्कान थी। हाथों में पहुँचियाँ, वक्ष पर हार और कंठा पहने था पुण्यपाल। उसका अँगरखा गुलाबी रंग का था।

पुण्यपाल को लेकर मंत्री सुबुद्धि राजसभा पहुँचा तो सारी सभा उसके मोहक रूप को देखती रही। राजा जितशत्रु ने थोड़ी देर उसे गोद में बैठाया और कहा—

"मंत्री ! तुम्हारे पुत्र को आज हमने सिंहासन पर बैठे हुए पहली बार गोद में लिया है। इस खुशी में इसे जो हम देना चाहते हैं सो सुनो।

"जब यह सयाना हो जाएगा तो हमारी ओर से एक नया भवन, दास-दासी रथ, घोड़े इसे अलग से मिलेंगे। इसका रहन-सहन और ठाट-बाट सब एक युवराज जैसे होंगे।"

मंत्री ने राजा की इच्छा को सराहा। सभासदों ने भी राजा के व्यवहार को पसंद किया कि जिस पर महाराज जितना प्रसन्न हो जाएँ उसे क्षण में क्या बना देते हैं।

धीरे-धीरे युवराज पाँच साल का हुआ। पाँच से फिर आठ का हुआ तो धूमधाम से उसका विद्यारंभ हुआ। आचार्यों के पास रहकर युवराज अनेक कलाओं का अध्ययन करने लगा।

युवराज की सभी विषयों में रुचि थी। अश्वारोहण, गजशिक्षा, तैरना, मल्लयुद्ध, धावन आदि के साथ-साथ शरसंधान, असिचालन, भाला प्रक्षेप आदि उसका मनोरंजन भी बन गया था। व्याकरण-साहित्य की तरह ही साथ-साथ वैद्यक, धर्म, संगीत, ज्योतिष, गणित, इतिहास, राजनीति आदि विभिन्न विषयों के शास्त्रों का अध्ययन भी युवराज बड़ी लगन से करता था। उसकी लगन और निष्ठा से उसके आचार्य बहुत प्रसन्न थे। वे उसे सदा शुभाशीष देते रहते थे।

"यह लिखावट ब्राह्मी कहलाती है। आजकल इसका प्रचलन है, इसलिए इसका सीखना जरूरी नही समझा जाता। लेकिन ी संस्कृति को जानने के लिए इस ब्राह्मी लिपि का जानना ी ही नही, अनिवार्य है। तुम्हारी लगन देखकर मै आज तुम्हे ग्रहालय मे ले आया हूँ।"

"पुण्यपाल! ब्राह्मी लिपि का आविष्कार कर्मयुग के प्रारम्भ ा था। इसका आविष्कार प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की पुत्री ने किया था। ये ब्राह्मी प्रथम चक्रवर्ती भरत की बहन भी ।"

पुण्यपाल ने ब्राह्मी लिपि सीखी। कुछ ही दिनो मे उसने ी लिपि मे लिखे सारे ताम्रपत्र पढ डाले। धीरे-धीरे पुण्यपाल अध्ययनकाल समाप्त हुआ और वह शस्त्र-शास्त्रो मे प्रवीण र, बहत्तर कला-निष्णात होकर घर लौटा।

पुण्यपाल के रूप-गुण, सदाचार, विनय, शिष्टता, मार्दव, , निरहंकार, साहसिकता, औदार्य, वीरता आदि गुणो से जन-प्रभावित हुआ। कमलावती तो फूली नही समाई। वर्षों बाद अपने पुत्र से मिली थी। राजा जितशत्रु ने उसे जो सुविधाएँ ा की थी, उनका उल्लेख करते हुए कमलावती ने कहा—

"पुत्र! तेरा भवन अलग है। तेरे सेवक, सैनिक सब कुछ ा है। हमारे राजा बडे दयालु है। उन्होने बिना किसी स्वार्थ म पर यह कृपा की है। एक दिन जाकर तुम उनका आभार पार आना।"

"हाँ पुत्र! नही तो राजा क्या समझेगा कि पुण्यपाल बड़ा ानी है।" मंत्री सुबुद्धि ने अपनी पत्नी कमलावती का समर्थन ा हुए कहा—"बेटा! इन सब सुख-साधनो की घोषणा महाराज शत्रु ने तब की थी, जब तू तीन साल का था और उन्होंने

पहली बार तुझे गोद मे लिया था। राजा को प्रसन्न करना हम
कर्तव्य है।"

पुण्यपाल ने दृढ स्वर मे कहा—

"अपने कर्मो से प्रसन्न करना हमारा कर्तव्य हो सकता है
पर राजा की झूठी प्रशंसा करके उसे प्रसन्न करना तो सर्वथा अनु
चित है।"

"पिताजी ! मैंने राजा से कोई सुविधा नही माँगी। फिर
आभार किस बात का प्रकट करूँ ? रही बात अहकार की।
अहंकार तो भीतर दिल मे होता है, न कि वाणी मे। ऐसा भी दे
गया है कि वाणी मे बहुत विनम्रता हो और भीतर अहकार
अहकार भरा हो। अत मैं राजा के प्रति आभार प्रकट करने क
नही जाऊँगा।"

कमलावती ने पति की ओर देखा और बोली—

"इसकी ओर से आप ही राजा की प्रशसा कर देना।
पर दबाव मत डालो।"

मन्त्री ने पत्नी की बात मानना ही ठीक समझा। वह पुण्यप
को लेकर राजसभा गया। राजा ने पुण्यपाल के लिए एक अ
आसन लगवाया था। पुण्यपाल राजा को अभिवादन कर बैठ
सध्या को यथासमय मत्री पुण्यपाल के साथ घर लौटा तो कमला
ने पूछा—

"आप तो व्यर्थ ही राजा से डरा करते हैं।" कमलावती बोली—"जब पुण्य अनुकूल होते हैं तो राजा खुश होता है और जब बुरे कर्मों का उदय होता है तो सगे माँ-बाप, मित्र, भाई आदि स्वजन भी प्रतिकूल हो जाते हैं।"

"अब इन बातों को छोड़ो।" मंत्री बोला—"पुण्यपाल को विद्यालय से आये देर नहीं हुई कि उसके लिए बेटियाँ भी आ गईं। वसन्तपुर के मंत्री अपनी कन्या का विवाह पुण्यपाल के साथ करना चाहते हैं।"

"यह तो मेरे मन की बात हो गई स्वामी!" कमलावती बोली—"पुत्रवधू के बिना मेरा घर-आँगन सूना है। भला, नाम क्या है बहू का?"

"कनकमंजरी।" मंत्री ने कहा—"लाखों में एक है। चौंसठ कलाएँ पढ़ी हुई है। पुण्यपाल और कनकमंजरी की जोड़ी बड़ी अच्छी रहेगी।"

ब्याह पक्का हो गया। पुण्यपाल का विवाह कनकमंजरी के साथ सोल्लास सम्पन्न हो गया। युवराज के से रहन-सहन और ठाट-बाट के साथ पुण्यपाल अपने नये भवन में सुखमय दाम्पत्य भोगने लगा। जब कभी वह वनभ्रमण को जाता तो चार अंगरक्षक उसके साथ चलते। उसके ऐश्वर्य को देखकर कुछों को ईर्ष्या भी होती और कह देते—यह है बिना मुकुट का राजा। पिता राजा का नौकर एक मंत्री ही है और पुत्र बिना पद के कितना कुछ है। □

3

"स्वामी ! क्या आप मेरे लिए सौत लायेंगे ? मै अपने भा
पर गर्व करती हूँ कि मै अपने प्राणेश्वर की अकेली हूँ, पर आज
सपने ने तो मुझे डरा दिया है ।"

"सपने से ही डर गई तुम ?" पुण्यपाल ने कनकमंजरी
कथन पर टिप्पणी की—"क्या सपने मे मैंने दूसरा ब्याह किया है

"प्रिये ! सपने की बात तो तुम जानो । पर मेरे हृदय
बात तो यह है कि तुम्हे पाने के बाद मुझे अब कुछ भी पाने
इच्छा नहीं है ।"

"समय से पहले इच्छा जाग्रत नहीं होती स्वामी !" कनक
मंजरी बोली—"आज आपकी इच्छा नहीं है, पर जब दूसरे विवा
का समय आयेगा तब इच्छा जाग्रत होने मे देर क्या लगती है ?"

"तो मैं तुम्हारे लिए अपनी इच्छा को मार भी तो सक
हूँ ।" पुण्यपाल ने कनकमंजरी को वक्ष से लगाकर कहा—"मु
तो कुछ और ही बात मालूम होती है ।"

"क्या बात ?" कनकमंजरी ने पति का बाहुपाश छुड़ाने
कहा—"कोई [illegible] बात तो कहोगे ?"

"प्रिये ! ऐसा भी हो सकता है कि तुम स्वप्न मोह के स
[illegible] से डर गयी । [illegible] का हृदय यदि दुर्बल हो तो उससे [illegible]

पत्नियाँ समा सकती हैं। वे पत्नियाँ देखने में अलग-अलग लगती हैं, पर होती एक का ही रूप हैं। लेकिन तुमने सपने में क्या देखा ? सपने की बात तो रह ही गई।"

"सौत का भय मुझे भी नहीं है स्वामी !" कनकमंजरी बोली—"यह तो युग की प्रथा है कि धनी और श्रीमन्त पुरुष अनेक को सहारा देता है। एक सूर्य क्या अनेक कमलिनियों को नहीं खिलाता ? सौतों में झगड़ा तब होता है, जब पुरुष में कुछ देने का अहंकार हो। सूर्य में कुछ देने का अहंकार नहीं होता। पुरुष कुछ खोने की न सोचे तो हम जितना चाहें उससे भरपूर पा लेंगी। फिर झगड़ा क्यों होगा ?"

"लेकिन सपना तो छूटा जा रहा है।" पुण्यपाल बोला—"मेरी उत्सुकता तुम्हारा सपना सुनने की है।"

"सपना भी सुनाऊँगी।" कनकमंजरी बोली—"पहले यह बताओ सपना सच्चा होता है या झूठा।"

"दोनों ही बातें हैं।" पुण्यपाल कहने लगा—"यह संसार भी तो सपना ही है। यह सच्चा भासता है, पर झूठा होता है। आज हम जो बातें कर रहे हैं, ये सच्ची हैं। छह महीने बाद ये ही बातें सपना हो जाएँगी। बीती हुई घटना और देखे हुए सपने में कोई अन्तर नहीं होता।"

कनकमंजरी जरा गम्भीर होकर कहने लगी—

"स्वामी ! मैं आपके साथ वन में भटक रही हूँ। आप मुझे छोड़कर चले गये हैं। मैंने आपको बहुत खोजा पर आप नहीं मिले। निराश हो गई तो किसी ने बताया कि तेरे पति ने तो दूसरा ब्याह कर लिया है। बस, फिर मेरी आँख खुल गई। मुझे लगता है कि यह सपना भविष्य की घटना का सूचक न हो। आप दूसरा

ब्याह करलें, इसकी चिन्ता नही। पर मुझे छोडकर दूसरी के रहे तो मैं जी नही सकूंगी।"

"ऐसा मत सोचो प्रिये !" पुण्यपाल बोला—"सपने मे दोनो वन मे भटक रहे है। यदि मैं तुम्हे छोड देता तो वन मे साथ क्यो भटकते ?

"प्रिये ! स्वप्नफल हो या ज्योतिष का फलादेश, भवि बारे मे जानने की कोशिश करनी ही नही चाहिए। जैसा जाए, भोगता चले। जो घटनाएँ हमारे जीवन मे पूर्व निश्चित ही क्रम-क्रम से आयेगी। उन्हे एक सफल अभिनेता की तरह जाना ही जीवन की सार्थकता है।"

कनकमंजरी संतुष्ट हुई। उसने सामायिक-प्रतिक्रमण और आज बहुविधि दान दिया। पुण्यपाल भी समस्त धर्मक्रि से निवृत्त होकर राजसभा जाने की तैयारी करने लगा।

× × ×

राजा जितशत्रु का दरबार लगा था। किसी देश का व्यापा लुटा-पिटा-सा राजसभा मे आया और बोला—

"अन्नदाता ! मैं ताम्रलिप्ति नगरी का व्यापारी अपना लेकर आया था। रास्ते मे मेरा सब माल डाकुओ ने लूट लि तन के कपडे मात्र मेरे पास रहे है। कानो के कुण्डल भी [illegible] नही छोडे। यदि आपके नगरसेठ मुझे थोडी-सी पूंजी ऋण तो मैं यही रहकर पुनः अपना व्यापार शुरू करूँ। लुटकर तो अपने देश लौटना नही चाहता।"

"राजा जितशत्रु की सभा मे तुम वैसे ही लौटोगे, जैसे [illegible] हो।" राजा ने बडे गर्व के साथ कहा—"तुम्हारी क्षति [illegible] [illegible] हम पूरी करेंगे। इसने बहुत से बिगडो को बना दि [illegible] [illegible] धन का [illegible] हमारे कोषाध्यक्ष को दे दो।"

राजा के इस औदार्य मे अहकार का पुट भरपूर था। चाटुकार सभासदो ने व्यापारी से कहा—

"हे सेठ! हमारे राजा मानवो के भाग्य-विधाता है। ये जिसे चाहे, उसे बना दें और जिसे चाहे उसे मिट्टी मे मिला दें।"

ये बाते सुनकर पुण्यपाल मुस्करा दिया। वह भी सभा मे था। उसकी मुस्कराहट देख राजा को अपनी उपेक्षा लगी। राजा ने पूछा—

"हे गुणागार पुण्यपाल! तुम क्यो मुस्कराये?"

"सभासदो की नासमझी पर!" पुण्यपाल ने बडी निर्भीकता से कहा—"अपने भाग्य का बनाने-बिगाडने वाला मनुष्य स्वय होता है। सभव है आपने पूर्वभव मे इस श्रेष्ठी से कुछ ऋण लिया हो। अपनी उदारता के रूप मे आप इस सेठ का ऋण ही इसे लौटा रहे है। इसका सार्थ लुटा तो इसके पापोदय के कारण। इसे आप धन दे रहे है तो इसके पुण्योदय के कारण। रात-दिन की तरह मनुष्य के जीवन मे पाप-पुण्यो का उदय होता रहता है।"

बात तो सच्ची थी, पर मीठी नही थी। कडवा सत्य राजा को बुरा लगा। उसने पुण्यपाल से कहा—

"अभी तुम नादान छोकरे हो। इसलिए अपनी धारणा बदलो और पुन समझने की कोशिश करो कि मेरी सामर्थ्य मे बनाना बिगाडना है या नही।

"पुण्यपाल! ताम्रलिप्ति के इस सेठ की बात तो जाने दो। अपनी बात कहो। आज तुम जो कुछ हो मेरी कृपादृष्टि के कारण हो। तुम्हारे ठाट-बाट मैने बनाये है। मै यदि चाहूँ तो तुम्हे दर-दर भटका दूँ।"

"आप भूल रहे है पृथ्वीनाथ!" पुण्यपाल ने उसी दृढता से

कहा—"मैं आज जो कुछ हूँ अपने पुण्यों के कारण हूँ और जो कु नही हूँ, अपने खोटे कर्मों के कारण हूँ। विराटनगर मे और भी लड़ है। वे सुन्दर भी हैं और विद्यावान भी है। आपने उनके ठाट-ब क्यो नही किये, मेरे ही क्यो किये ? इसलिए कि मैंने ऐसे पुण्यो बन्ध किया है कि मैं ऐसा ऐश्वर्य का जीवन जी सकूँ।"

"तो हम कुछ भी नही। तुम हमारी सामर्थ्य को चुनौ दे रहे हो ?" राजा क्रोध मे चीखने लगा—"मंत्री सुबुद्धि ! सुन हो, अपने पुण्यपाप की बाते। इसे समझा दो कि सचाई को स्वीक कर ले, वरना परिणाम अच्छा नही होगा।"

मंत्री ने प्रार्थना के स्वर मे कहा—

"अन्नदाता ! छोटों की शोभा अपराध करने मे ही है। आ बड़े हैं। आपकी शोभा छोटो के खोटो को भुलाने मे है। यह न जाने पर मैं तो आपकी सामर्थ्य जानता हूँ। पूरा नगर जानता है आपकी कृपादृष्टि क्या से क्या कर देती है। मैं इसे समझा दूँगा अभी इसने देखा ही क्या है।"

मंत्री की खुशामद से राजा का क्रोध शान्त हुआ। घर आ मंत्री अपने पुत्र पर बिगड़ा—

"क्या यह जरूरी है कि सिद्धान्त के पीछे अपना जीवन न किया जाए ?

"पूज्यपाद ! मान लो कोई व्यक्ति ढेला फेंक रहा है। गुजर रहे हो तो संयोग से वह ढेला तुम्हारे सिर मे लग सकता है लेकिन जब ऊपर से कोई धूल बरसा रहा हो तो उस धूल के नी खड़े हो जाओ, क्यों कि यह धूल संयोग से मेरे सिर पर गि है तो वह ठीक होगा ?

"मैं मानता हूँ कि पुण्यों से सब कुछ मिलता है। पर रा की बात मान लेने से तुम्हारा बिगड़ता क्या है ? यदि तुम राजा

समर्थन करके उसकी सामर्थ्य को स्वीकार कर लोगे तो क्या तुम्हारे पुण्य ध्वस्त हो जाएँगे ? तुम तो आ बैल मुझे मार वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हो।"

"राजा की बात न मानने से मेरा क्या बिगड़ेगा ?" पुण्यपाल बोला—"पुण्यों के फल में यदि विश्वास अटूट हो और कर्मसिद्धान्त में धारणा दृढ़ हो तो राजा की बात न मानने से मेरा क्या बिगड़ेगा ? कुछ भी नहीं।

"पिताजी ! आप जो राजा के समर्थन की बात कहते हैं, इसका अर्थ सीधा-सा यही है कि कर्मसिद्धान्त में आपकी धारणा दृढ़ नहीं है और कर्मफल में अटूट विश्वास नहीं है।"

पास बैठी कमलावती ने कहा—

"बेटा ! तेरी बात का समर्थन मैं पूरी तरह से करती हूँ। लेकिन एक बात पूछूँगी। राजा की बात न मानने से भी तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा और उसकी बात मानने से भी कुछ नहीं बनेगा तो फिर राजा की बात मान लेने में ही क्या बुराई है ?"

"बुराई है माँ !" पुण्यपाल बोला—"फिर लोगों का विश्वास कर्मसिद्धान्त से हटने लगेगा। लोगों को अपने पुण्यों और धर्म का [illegible] होकर राजा का सहारा रहेगा। धर्म की बात मुँह से मानने की नहीं होती, दिल और दिमाग से मानने की होती है। दिल में विश्वास होता है और दिमाग में धारणा होती है। जब यह बात [illegible] निश्चित है कि मेरा बनना-बिगड़ना मेरे शुभाशुभ कर्मों पर आधारित है तो मैं राजा के झूठे अहंकार का समर्थन क्यों करूँ ?" ऐसा करने से तो मैं जैनधर्म का अनादर ही करूँगा।"

पुण्यपाल की दृढ़ता देख मंत्री सुबुद्धि ने फिर कुछ नहीं कहा। राजसभा की सब बातें कनकमंजरी ने भी सुनी तो रात को उसने अपने पति से पूछा—

"स्वामी ! मै तो अल्पज्ञ हूँ । फिर भी एक शका है कि य
राजा आपसे सब सुविधाएँ छीन ले तो क्या होगा ?"

"मेरे लिए इन सुविधाओ का मूल्य ही क्या है, जो कुछ हो !
पुण्यपाल बोला—"मूल्य होने पर व्यक्ति चिपकता है और मूल्य न
पर उनका उपयोग तो करता है, पर चिपकता नही है ।

"प्रिये ! मेरी बात यो समझो कि केला खाते समय केले
छिलके का उपयोग तो होता है, पर उसका मूल्य नही होता । इसलि
केला खाकर हम बड़े सहज भाव से उसके छिलके को फेंक देते है
मूल्य भोजन का है, उस पात्र का नही है, जिसमे भोजन किया जा
है । थाली सोने की हो या तांबे की अथवा पत्तो की पत्तल हो-
उसके उपयोग मे कोई अन्तर नही है । सभी मे रोटी रखकर ख
जाएगी ।

"प्रिये ! यदि अशुभ कर्म उदय मे आयेंगे तो सब सुविध
छिननी ही चाहिए और फिर जब पुण्य प्रकट होगे तो इससे हजा
गुने भोग मिलेंगे । इसी दृढ धारणा और अटूट विश्वास के कार
मै राजा की बात मानने को तैयार नही हूँ ।"

पुण्यपाल की दृढ़ता की चर्चा नगर भर मे फैल गई थी
यद्यपि पुण्यपाल की बात ही सच्ची थी, पर मंत्री सुबुद्धि का म
[illegible] नही था । अपने-अपने संस्कारो की बात होती है । म
सोचता था कि राजा कुपित हो गया तो बड़ा बुरा होगा । पुण्य
[illegible] था । अतः उसने यही ठीक समझा कि पुण्य
[illegible] हो जाएगी । अतः उ
पुण्यपाल से कहा—

"पुण्य ! राजा की हाँ मे हाँ मिलाने के अलावा मैं कुछ
[illegible] होगा ?"

"मानूंगा पिताजी ! आपकी आज्ञा मानना मेरा परम कर्तव्य है।"

"तो बेटा ! तू तब तक राजसभा मत जा, जब तक राजा का बुलावा न आये।"

पुण्यपाल ने यह बात मान ली। उसने राजसभा जाना छोड़ दिया। राजा जितशत्रु ने भी पुण्यपाल के प्रति कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। मानो वह इस प्रसग को भूल ही गया। इसी तरह तीन महीने बीत गये।

एक दिन अचानक ही राजा जितशत्रु की भेंट पुण्यपाल से वन में हो गई। होनहार को बन्दी कौन बना पाया है। दोनों वनभ्रमण को निकले थे और आमना-सामना हो गया। चार अगरक्षक पुण्यपाल के साथ थे। बड़े-छोटे की मर्यादा के अनुसार पुण्यपाल ने घोड़े से नीचे उतरकर राजा का अभिवादन किया। उसे देख राजा मुस्कराया और बोला—

"अब तो मान गये मेरी सामर्थ्य को ? चार अगरक्षकों के साथ तुम घूम रहे हो, यह सब मेरी प्रसन्नता के कारण है। बनाने-बिगाड़ने की सामर्थ्य राजा जितशत्रु में है, इसको तुम चुनौती नहीं दे सकते।"

"मेरा विचार आज भी वही है, जो पहले था।" पुण्यपाल ने कहा—"आप मेरी भोग सामग्री के निमित्त भर हैं। पुण्य ही निमित्त बनाते हैं। निमित्त का कोई मूल्य मेरी दृष्टि में नहीं है।"

राजा कुपित हो गया। बोला वह—

"आज राजसभा में आना। वहीं मैं सबके सामने तुम्हारे भाग्य का फैसला करूँगा। देखूँगा, तुम्हारे पुण्य क्या करते हैं।"

पुण्यपाल यथासमय राजसभा पहुँचा। राजा अभी नहीं आया

था। जब राजा आया तो सभा के नियमानुसार राजपुरोहित ने स्वस्ति पाठ किया और चारण ने विरद बखाना। राजा बीच में ही बोल पड़ा—

"चारण ! बैठ जाओ। आज हमें पुण्यपाल की चुनौती का उत्तर देना है।"

फिर राजा ने पुण्यपाल से कहा—

"पुण्यपाल ! मैं तीसरी बार तुम्हें बचने का अवसर दे रहा हूँ। मुझे तुम पर दया भी आती है। मुझे भी तो दिखाओ कि तुम्हारे पुण्य कहाँ हैं। स्पष्ट तो यही दीख रहा है कि तुम मेरे दिये भोगों को भोग रहे हो।"

"राजन् ! आत्मा अदृश्य शक्ति होती है और देह दृश्य शक्ति है। जैसे अदृश्य आत्मा साकार देह में प्रविष्ट होकर कार्य करती है, वही दशा पुण्यों की है। पाप-पुण्य अदृश्य होते हैं और उनका निमित्त दृश्य होता है। मेरे पुण्यों के कारण आप निमित्त बनकर मुझे भोग सामग्री दे रहे हैं। पर आपकी स्वयं की यह सामर्थ्य नहीं है कि मेरा कुछ बना सके या बिगाड़ सके।"

पुण्यपाल ने सभी की टिप्पणियाँ सुनी। उसने यह भी सुना—

"राजा को भी बाल की खाल नहीं निकालनी चाहिए।"

"पुण्यपाल ने कटवा तो बोला, पर बोला सत्य।"

लेकिन ऐसी टिप्पणियाँ करने वाले कम ही थे। मंत्री सुबुद्धि का मुख मुरझा गया था। उससे कुछ कहते नहीं बन रहा था। उसे अपने पुत्र पर ही क्रोध था कि उसने मेरी बात न मानकर इतना संकट मोल ले लिया।

पुण्यपाल के देश-निष्कासन की चर्चा नगर भर में फैल गयी। कमलावती तो सुनते ही मूर्च्छित हो गई। कनकमंजरी रोते-रोते बेहाल थी। लेकिन पुण्यपाल न दु:खी था, न सुखी। ऐसी अवस्था को ही समतारस की स्थिति कहते हैं, जो पुण्यपाल जैसे धर्म-निष्ठों को ही प्राप्त होती है या फिर ऋषि-मुनि इस रस का पान कर पाते हैं। क्रिया-प्रधान धर्म करने वाले समतारस का पान नहीं कर पाते।



4

कनकमंजरी ने हठ किया—

"स्वामी ! मैं आपके साथ चलूंगी। आप तो यही कहेगे कि यही रहकर सास-श्वसुर की सेवा करो। पर वनगमन वाले पतियो का इतिहास देखो। सीता राम के साथ गई थी। दमयन्ती ने भी नल का साथ नही छोड़ा था। द्रौपदी पाण्डवों के साथ वन-वन भटकी थी।"

"इतिहास से हमें शिक्षा लेनी चाहिए।" पुण्यपाल बोला—"इतिहास की गलतियां दुहराना बुद्धिमानी नही है।

"प्रिये ! सीता ने राम की बात नही मानी तो दुःख भोगा। वह सब तुमने सुना है। अत. दुःख उठाने की गलती तुम क्यो कर रही हो ?"

"दु.ख की बात आपने खूब कही।" कनकमजरी बोली—"पति के साथ रहकर जो कष्ट मिलते है, वे भी सुखकर होते है और पति के बिना सब भोग, सब सुख और सुविधाएं कष्टप्रद हुआ करती हैं।

"स्वामी ! पति से पत्नी का सम्बन्ध तो काया-छाया का होता है। जब त्रिकाल मे छाया काया से अलग नही रही तो मैं ही आपके बिना कैसे रह सकती हूँ।"

अन्तत. पुण्यपाल को कनकमजरी की बात माननी पडी। पत्नी को तैयार होने का आदेश देकर पुण्यपाल माता कमलावती से विदा लेने गया तो माता की आंखे बरस पडी। बोली वह—

"बेटा ! मैं ऐसा हृदय कहाँ से लाऊँ कि तुझे जाने को कहूँ ? कैसे कहूँ कि जाओ बेटा।

"मेरे लाल ! तेरे लौटने की तो कोई अवधि भी निश्चित नहीं है। तू तो सदा के लिए जा रहा है। यह राजा कैसा कठोर है जो हमें भी तेरे साथ नहीं जाने देता।"

"माँ ! कर्मों में विश्वास करो।" पुण्यपाल ने कहा—"मेरा विश्वास अटल है। एक दिन मैं यहाँ अवश्य आऊँगा। राजा ने मुझे जो देशनिकाला दिया है, इसमें भी मेरा हित किया है। दैव की योजना कोई नहीं जानता। बुराई में भलाई छिपाना दैव की लीला होती है।

"माँ ! तुमने बचपन से ही मुझे धर्म का मर्म समझाया है। धर्म का सहारा लेने वालों को शोक-वियोग और भय तो सता ही नहीं सकता। तुम मोहवश विचलित हो रही हो। धर्म और धैर्य का सहारा लेकर मुझे आशीर्वाद दो कि जहाँ भी जाऊँ तुम्हारे दूध की लाज रखूँ।"

कमलावती मौन हो गई। उनसे कुछ कहते न बना। पुण्यपाल ने उनके चरण छुए और पिता से मिलने चल दिया। पिता सुबुद्धि भी शोकाकुल थे। पुत्र को वक्ष से लगाकर मंत्री सुबुद्धि रोने लगे। पुण्यपाल ने उन्हें धीरज बँधाया। द्वार पर रथ तैयार खड़ा था। पुण्यपाल और कनकमंजरी रथ में बैठे। दोनों को विराटनगर से बीस कोस दूर एक वन में छोड़कर रथ वापस आ गया। पुण्यपाल के चले जाने से नगर-भर में शोक छा गया था। हर घर में मातम-सा छाया था। कमलावती और सुबुद्धि को सामान्य होने में काफी दिन लग गये। बड़े-से-बड़ा शोक-वियोग समय की धारा में बहता जाता है।

कनकमंजरी और पुण्यपाल वनमार्ग से पैदल-पैदल ही चल

रहे थे। कभी संध्या को तो कभी दोपहर को ही चलना बन्द कर देते। वन मे किसी वृक्षमूल में रात विताते और सवेरे चल देते। बाते करते रात कटती। मार्ग भी कथा-प्रसगो के सहारे कटता जाता।

"क्या हमारा जीवन अब यो ही वन-वन भटकते बीतेगा ?" कनकमजरी ने कहा—"स्वामी ! अब कोई नगर आये तो वही आप ठहरने की व्यवस्था कर लें। मैं स्वय किसी की मजूरी कर लूंगी।"

"तुम मजूरी करोगी ?" पुण्यपाल बोला—"प्रिये ! नट-नर्तक ही स्त्रियो की कमाई खाते है। मैं क्या मर गया हूँ, जो तुम मजूरी करोगी ?

"प्रिये ! जो पुरुष अपनी स्त्री का उदर-पोषण नही कर सकते वे भी कोई पुरुष है ? लगता है तुम थक गई हो ?"

"साहस और उत्साह का साकार रूप आप मेरे साथ है तो फिर मैं क्यो थकूंगी ?" कनकमंजरी पति के पैर दबा रही थी। दाएं पैर हाथ मे लेते हुए बोली—"ये चरण मेरा बल है। जिस दिन मेरा यह बल थकेगा, उसी दिन मैं भी थकूगी।"

"यदि मैं तुम्हारा बल हूँ तो तुम मेरी शक्ति हो।" पुण्यपाल बोला—"स्त्री पुरुष की शक्ति होती है। सुना तो होगा कि बिना शक्ति के शिव, शव हो जाता है। शव मे जब 'इ' नाम की शक्ति मिलती है, तभी वह शव, शिव अर्थात् कल्याणकर्ता हो जाता है।"

"यह तो काव्य रचना का चमत्कार रहा स्वामी !" कनकमजरी ने प्रसंग बदलकर कहा—"आप बुरा न मानें तो एक बात पूछूं।"

"पूछो !" पुण्यपाल ने अनुमति दी—"तुमसे बातें करने की जो फुरसत यहां वन मे मिली है, वैसी विराटनगर मे कहाँ थी ?"

कनकमजरी बोली—

"स्वामी ! यदि आप राजा जितशत्रु के अहंकार को पुष्ट कर

देते । यह कह देते कि उसी के कारण आप सुखी हैं तो वह आपको देशनिकाला क्यों देता ?'

"देशनिकाला तो मेरा होना ही था ।" पुण्यपाल बोला—"पर उसके लिए कोई बहाना भी तो चाहिए । राजा बहाना बना । इसीलिए उसने ऐसी बात कही, जो मैं मान नहीं सकता था ।"

"प्रिये ! यह देशनिकाला राजा जितशत्रु का दिया हुआ नहीं है, मेरे कर्मों के कारण है । राम ने किसी की कौन-सी बात नहीं मानी थी ? उन्होंने क्यों अपना देश छोड़ा ? ये सब कार्य पूर्व नियोजित होते हैं । अतः यह बात तो तुम मन से निकाल ही दो कि राजा ने कुछ किया है ।"

सूर्यास्त होने में देर थी । पुण्यपाल ने बातें करना बन्द कर पत्नी से कहा—

"प्रिये ! मैं कुछ फल तोड़ लाऊँ । सांध्य-कर्मों का समय हो रहा है ।"

पुण्यपाल फल ले आया । सांध्य सामायिक और प्रतिक्रमण करने के बाद दोनों ने फलाहार का भोजन किया और सो गये । प्रातःकाल उठे और नित्य-कर्मों से निवृत्त होकर पुनः चल दिये ।

इसी क्रम से चलते-ठहरते दोनों किसी नगर के निकट पहुँच गये । नगर से डेढ़-दो कोस दूर सरोवर पर डेरा जमाया । पुण्यपाल ने सुझाव दिया—

"प्रिये ! रात इसी सरोवर पर बितायें । सवेरे इस नगर में चलेंगे । सम्भव हुआ तो यहाँ के राजा के यहाँ कोई कार्य पा लूँगा । यह भी नहीं हुआ तो जंगल से लकड़ी काटूँगा ।"

"जैसे भी होगा रह लेंगे ।" कनकमंजरी बोली—"बहुत दिनों से अन्न का भी कण नहीं मिला । भोजन के बिना शक्ति भी तो नहीं रहती ।"

"भोजन से शक्ति मिलती है, यही तो एक दुराशा है। प्रिये यह आशा झूठी है कि भोजन से शक्ति मिलती है। क्योंकि जो ची बनाती है, वह चलाती नही है। भोजन का कार्य शरीर का बना है, न कि उसे चलाना।"

"तो फिर शरीर किस शक्ति से चलता है?" कनकमजरी पूछा—"जब भोजन मे शक्ति नही है तो आप क्यो भो करते है?"

पुण्यपाल ने बताया—

"शरीर के भीतर जो प्राणशक्ति है, वही उसे चलाती है। लोग भोजन का सम्बन्ध शक्ति से मानते है, वे भोजन करने के ब कार्य करते है और जो उनका सम्बन्ध शरीर-पोषण से मानते हैं, कार्य करने के बाद भोजन करते है।

"प्रिये! आयुर्वेद मे ऐसा कहा गया है कि भोजन करने बाद राजा की तरह विश्राम करे, न तो दौड़े और न तैरे। यदि व ऐसा करेगा तो मृत्यु उसके पीछे-पीछे दौडेगी—

भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नं कर्मो गता।
न धावनं न प्लावनं मृत्यु धावति धावतः॥

"यह तो आपने नई बात बताई।" कनकमजरी बोली "लेकिन ससार तो इसी भ्रान्ति मे चल रहा है कि भोजन से श मिलती है।"

"इसीलिए रोग फैले है।" पुण्यपाल बोला—"दु खो कारण हर स्तर की भ्रान्तियां है। मन के स्तर पर लोग धन सुख मानते है और सग्रह की प्रवृत्ति अपनाते है। उसका उलटा प णाम यह होता है कि ज्यो-ज्यो धन बढता है, त्यो-त्यो चिन्ता बढती है।

"धन के उपयोग मे मैं इनकार नही करता। लेकिन व

कमाये हुए धन के दसवें भाग को अन्यों में बाँटकर उसका भोग किया जायगा तो चिन्ता पास नहीं आयेगी।"

इस तरह की बातों में काफी रात बीत गई। सवेरे उठकर दोनों नित्यकर्म से निवृत्त हुए तो पुण्यपाल बोला—

"प्रिये! मैं उस नगर में हो आता हूँ। तब तक तुम यहीं बैठो। ज्यादा दूर नहीं है। ठहरने की व्यवस्था करके आऊँगा और तुम्हारे लिए भोजन भी लेता आऊँगा।"

यह कह पुण्यपाल नगर की ओर चला। उसे जाते हुए कनकमंजरी देखती रही। जब वह आँखों से ओझल हो गया तो सूखे पत्तों पर करवट बदलकर लेट गई और विचारों की दुनिया में खो गयी।

पुण्यपाल नगर के हाट-बाजारों को देखता हुआ किसी धर्मशाला की तलाश कर रहा था। तभी उसने ढिंढोरा पिटते सुना। उद्घोषक कह रहा था—

"जो भी श्रेष्ठी पुण्यदत्त के साथ समुद्र यात्रा के लिए जाएगा, उसे वेतन के अलावा रहने-सहने की सब सुविधाएँ दी जाएँगी।"

घोषणा को अच्छी तरह न समझ पुण्यपाल आगे चल दिया। अपने घर के चबूतरे पर उसने एक वृद्ध को अकेला बैठा देखा तो चबूतरे पर चढ़ गया और प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। तदनन्तर उसने पूछा—

"पूज्य! मैं परदेशी हूँ। इस नगर के बारे में कुछ बताइए।"

"इस नगर का नाम रत्नपुर है।" वृद्ध ने कहा—"रत्नसेन यहाँ के राजा हैं। व्यापारिक दृष्टि से इस नगर का महत्त्व है, क्योंकि समुद्र के किनारे बसा है। विदेशी व्यापारी यहाँ आते ही रहते हैं। तुम भी क्या कोई व्यापारी हो?"

"व्यापार की आपने खूब याद दिलाई।" पुण्यपाल बोला—"यह पुष्पदत्त कौन है? अभी मैंने घोषणा सुनी थी कि जो पुष्पदत्त के साथ समुद्री यात्रा करेगा, उसे वेतन और सब सुविधा मिलेगी।"

"बडे लोगो की बाते बडी निराली होती है।" वृद्ध ने कहा—"इसी रत्नपुर मे श्रीदत्त नामक एक सेठ रहते है। धन की को कमी नही है। करोड़पति है। पुष्पदत्त उन्ही का इकलौता बेटा है

"पुष्पदत्त ने समुद्र पार जाकर व्यापार करने का निश्चय किय है। सात जहाज भरे तैयार है। हरेक जहाज पर एक-एक व्यक्ति की उसे खोज है। छह मिल गये। सातवे की तलाश है। उस का ढिढोरा कई दिन से पिट रहा है।"

"तो क्या लोग सहज मे ही समुद्र यात्रा के लिए तैयार नह होते?" पुण्यपाल ने पूछा—"बेरोजगारो को तो झट तैयार ह जाना चाहिए।"

"रोजगार से प्राणो का मूल्य अधिक है।" वृद्ध ने कहा—"समुद्री यात्रा प्राणो पर झेलना होता है। इसीलिए कोई-कोई ह यह साहस कर पाता है।"

"मृत्यु तो सब जगह है।" पुण्यपाल ने वृद्ध से कहा—"पूज्य आप ही बताये, मृत्यु कहां नही है। उठते-बैठते, खाते-पीते हर सम मृत्यु साथ रहती है। जब कोई नही होता, तब नितान्त अकेले मे भ चिर-संगिनी मृत्यु रहती है।"

"तुम्हारी बात से मै सहमत हूं वत्स।" वृद्ध ने कहा—"मर वाले घर मे भी मरते है और जिन्हे बचना होता है, वे समुद्र मे डू कर भी बचते ही है। लेकिन मृत्यु का भय तो मनुष्य को उलझन डाले रहता है कि यह करो, यह न करो। पुष्पदत्त भी इसी भय कारण सात सेवको को एक-एक जहाज का स्वामित्व सौपकर सा

ले जाना चाहता है। उसने सोचा है कि सब के भाग्य में मेरा साझा हो जायगा। सब के पुण्य जहाजों को डूबने से बचायेंगे तो मैं भी बच जाऊँगा।"

"अपनी-अपनी समझ है।" पुण्यपाल बोला—"सातों पापी हुए तो पुण्यदत्त को भी ले डूबेंगे और यदि एक पुण्यदत्त पुण्यात्मा हुआ तो सबको बचा लेगा। अच्छा पूज्य! मैं चलूं। आपने नगर की जानकारी दी, उसके लिए धन्यवाद। मैं किसी धर्मशाला को खोजूंगा।"

यह कह पुण्यपाल वृद्ध के पास से उठ गया और धर्मशाला की खोज में चलते-चलते एक जगह रुककर विचार करने लगा—

'पुण्यदत्त के साथ मैं ही चला जाऊँ तो कैसा रहे? लगता है दैव ने सातवां स्थान मेरे लिए ही खाली छोड़ा है। धर्मपरीक्षा का यह एक अवसर है। अकेले में ही भाग्य-परीक्षा हो पाती है।'

'लेकिन कनकमजरी?' पुण्यपाल ने कनकमजरी के बारे में सोचा—'उसका क्या होगा? उसे छोड़कर जाऊँ कैसे? उसे साथ भी ले जा नहीं सकता। उसे यहीं छोड़ दूं। उसे छोड़कर जाना उसी के हित में है। मेरे साथ कहाँ-कहाँ भटकेगी? संसार में भले जनों की कमी नहीं है। मेरी खोज में कनकमजरी रत्नपुर आयेगी। किसी भले जन का आश्रय उसे अवश्य मिल जाएगा। फिर आश्रय तो धर्म का होता है। कनकमजरी शीलवती नारी है। शासनदेव उसकी रक्षा करेंगे। नल ऐसे ही दमयन्ती को छोड़ गया था तो दमयन्ती ने अपने दुर्दिन अपने शीलधर्म के सहारे काट लिए थे। कनकमजरी भी रत्नपुर में रहेगी। फिर तो मैं पुण्यदत्त के साथ लौट ही आऊँगा।'

हृदय को कड़ा करके पुण्यपाल सागर तट की ओर दौड़ा गया। रह-रहकर उसे आशंका हो रही थी कि मुझसे पहले कोई और न पहुँच जाए सो बड़ा तेज चल रहा था।

पुष्पदत्त एक तम्बू मे बैठा था। उसके माता-पिता, मित्र आदि उसे घेरे बैठे थे। तभी पुण्यपाल पहुंच गया और बोला—

"आपका सातवां सेवक मैं रहा।"

"ओह तुम !" पुष्पदत्त ने चौंककर कहा—"तुम तो देवदूत मे आये हो भैया ! प्रस्थान का मुहूर्त तो टला ही जा रहा था। ठीक वक्त पर आये। अब जहाज निश्चित मुहूर्त मे प्रस्थान करेंगे।"

पुण्यपाल खुश हो गया। पुष्पदत्त ने पुण्यपाल को उसी जहाज मे बैठाया, जिसमे वह स्वयं बैठा था। उसका जहाज बीच मे था। यथासमय शखनाद के साथ जहाजो के लगर उठे। सेठानी श्रीदत्त और सेठ श्रीदत्त अपने पुत्र के जहाजो को जाते हुए खडे-खडे देख रहे थे। सागर की तरगो को चीरते हुए जहाज उसी तरह बढते जा रहे थे, जैसे ममता ज्ञानी ससार के उतार-चढावो को देखता चलता है। पुण्यपाल के जीवन का दूसरा अध्याय शुरू हुआ था।

इधर कनकमजरी बडी व्याकुल हो रही थी। अभी तक स्वामी क्यो नही लौटे ? सध्या भी हो गई। उसके मन मे तरह-तरह के विचार आने लगे। कभी सोचती—कही कुछ हो न गया हो। किसी चक्कर मे तो नही फंस गये। फिर एकाएक ही अपने सपने की याद आ गई। वन-वन भटकने का सपना तो सच्चा हो ही गया। हाय राम ! कही दूसरी बात भी सच न हो। दैव तू बडा क्रूर होता है।

कनकमजरी रोने लगी। पर वन मे उसका रुदन सुनने वाला कौन था ? रात के चरण बढने आ रहे थे। पति की प्रतीक्षा टूट जाने के बाद अब वह पति की खोज मे रत्नपुर की ओर बढ चली। तभी एक जगली हाथी ने उसका पीछा किया। कनकमजरी बेतहाशा दौडी। पर कहां तक दौड पाती ? हारे को धर्म का सहारा। हारकर नवकार मन्त्र का जाप करने बैठ गई और प्राणो का मोह त्याग दिया।

धर्म ने चमत्कार दिखाया। हाथी कनकमजरी के पास आकर खड़ा हो गया और चिंघाड मार वन मे चला गया। कनक का जाप अब भी चालू था। आँखें खोली तो अपने को सुरक्षित पाया। यदि जीवन मे सकट न आये तो धर्म के प्रति आस्था कैसे बढ़े ? कनकमंजरी की धर्म के प्रति आस्था बढी और उसने निश्चय किया कि धर्म-रज्जु के सहारे मैं रत्नपुर मे रहकर ही अपने पति को पाऊँगी।

कनक रत्नपुर पहुँची। एक उपाश्रय मे शरण ली। पति के न मिलने तक मौन धारण किया और बेला, तेला, अष्टम आदि तप करके पति की प्रतीक्षा करने लगी।

कनकमजरी के मौन-तप की बात पूरे नगर मे फैल गई। सब उसे देखने आते और नमन करके चले जाते। राजा रत्नसेन भी आये। उन्हे इस बात का दु ख हुआ कि मेरे नगर मे इस सती को कोई कष्ट है। वे कनक से नही बुलवा सके। तब उन्होंने घोषणा करा दी कि जो भी इस सती का मौन तोडेगा, मै उसे अपना सर्वस्व भेंट दे डालूंगा। 

5

श्रीपुर नगर समृद्धि का आगार था। समुद्रतटवर्ती उस नग मे दूर-दूर के व्यापारी आते थे। धन-धान्य से सम्पन्न उस नगर क राजा था शूरसेन। शूरसेन प्रजावत्सल राजा था। एक बार उस दे मे सूखा अकाल पडा। पोखर-तालाब सब सूख गये। कुओ का पान भी बहुत नीचा हो गया। पशुओ को घास-तृण भी नसीब नही होत था। राजा ने अपने अन्न भण्डार प्रजा के लिए खोल दिये। विदे सहायता भी ली गई। अकाल कट गया और फिर खूब वर्षा हुई त खेती लहलहाने लगी।

ऐसे ही सुकाल मे राजा शूरसेन ने अपनी सभा मे कहा—

"अन्न से ज्यादा जरूरी पानी है। इसीलिए पानी को जीव भी कहते है। प्रकृति का कोई भरोसा नही। जाने कब सूखा प जाये। अत मैं पशु-पक्षियो और नागरिको—सभी के हित मे ए विशाल तालाब बनवाना चाहता हूँ। इसमे बारहो मास पानी भ रहेगा। जल की समस्या हल होगी।"

एक स्वर से सभी ने राजा के प्रस्ताव का समर्थन किय नगरसेठ ने एक लाख स्वर्णमुद्राएँ देने की घोषणा दरबार मे क दी। फिर तो नगर के सभी श्रेष्ठियो ने अपना हाथ बँटाने क निश्चय किया। यद्यपि इसकी जरूरत नही थी, क्योकि राजा शूर अपने खर्चे से ही यह सरोवर बनवाना चाहते थे। करोडो की योज थी। सब व्यय राजा को ही करना था।

हजारो मजदूरो को काम मिल गया। स्त्रियाँ भी हाथ बँटाने लगी। तालाब खुदने लगा। राजा शूरसेन स्वय भी मजदूरो का उत्साह बढाने जाते थे। पहले दिन उन्होंने ही पांच कुदाल चलाकर खुदाई का श्रीगणेश किया था।

तालाब खुदते महीना भर हो गया था। एक दिन एक कुदाल के नीचे एक बडा-सा ताम्रपत्र निकला। मजदूर ने आवाज देकर सबको अपने पास बुलाया। सब उस ताम्रपत्र का तमाशा देखने लगे। एक वृद्ध ने राय दी—

"भाइयो! खुदाई का काम यही रोक दो। मैंने ऐसा सुना है कि यदि खुदाई मे ताम्रपत्र निकले तो वह किसी देव का आदेश होता है। जरूर इसमे कुछ चेतावनी होगी। इसे राजा के पास ले चलो।"

"यहाँ किसी राजा का महल होगा।" एक दूसरे ने कहा—"पुराने राजा अपने बारे मे लिखकर ताम्रपत्र गडवा देते थे कि शायद कभी युगो बाद खुदाई हो तो हमारे बारे मे लोग जान ले।"

"जो भी होगा, इसको पढने से पता चल जायगा।" वृद्ध ने कहा—"आगे का कार्य राजाज्ञा से ही करना है।"

ताम्रपत्र राजा शूरसेन के पास पहुँच गया। राजा ने मिट्टी मे लिपटे इस ताम्रपत्र को धुलवाया। मांजने के बाद उसमे लिखे अक्षर उभर आये। राजा उन्हे पढने लगा और अपने मत्री से बोला—

"तुम पढो मत्री! मेरी तो कुछ समझ मे नही आता।"

मत्री ने पढने की कोशिश की और कहा—

"महाराज! यह किसी अपरिचित लिपि मे लिखा है। इसको पढने वाला तो ढूँढना पडेगा। पुरानी लिपियाँ आज लुप्त हो गई है। इनके नाम भर सुने जाते है।"

राजा ने अपने नगर के विद्वान् पडित, लिपि विशारद बुलवाये। कोई भी उस ताम्रपत्र को नही पढ सका। अब तो राजा को चिन्ता

बढ गई। उसने सोचा, 'यदि ताम्रपत्र न निकलता तब तो कोई ब
नहीं थी। अब यदि इसके लेख की उपेक्षा करके खुदाई करवाऊँ
तो अनर्थ हो सकता है।'

अपनी चिन्ता के निवारणार्थ राजा शूरसेन ने अपने उद्घोष
से कहा—

"हमारे नगर मे दूर-दूर के लोग आते ही रहते हैं। पता नहीं
कौन ऐसा निकल आये जो इस ताम्रपत्र को पढ सके। अत तुम ह
दिन एक बार यह घोषणा नगर मे कर दिया करो कि जो भी रा
को प्राप्त ताम्रपत्र को पढेगा, राजा शूरसेन अपनी पुत्री सौभाग्
मंजरी का विवाह उसके साथ करेगा।"

तालाब की खुदाई का काम कालान्तर के लिए बन्द हो गया
राजा की घोषणा नित्य सवेरे एक बार नगर मे दुहरा दी जाती
अभी तक कोई ऐसा भाग्यशाली नर नहीं आया था, जो राजा
जामाता बन सके। तीन महीने यो ही बीत गये। इन महीनो के सा
राजा की चिन्ता दिन-पर-दिन बढती जाती थी। उसे अब ताम्रप
पढाने से अधिक चिन्ता अपनी पुत्री के लिए हो गई। यदि ताम्रप
न पढा गया तो मेरी बेटी कुँवारी ही रह जाएगी।

× × ×

आँधी-मेह और तूफान, अँधियारी रातें तथा जलदस्युओं
संकटो को पार करते हुए पुष्पदत्त के सातो जहाज सकुशल श्री
नगर के बंदरगाह पर पहुँच गये। पुष्पदत्त ने पुण्यपाल को धन्यव
देते हुए कहा—

"पुण्यपाल! सचमुच तुम पुण्यपुञ्ज हो। यदि तुम न होते
जल-दस्यु हमारे जहाजो को लूट लेते। तुम्हारे तीरो की मार ने उन
छक्के मिट्टी मे मिला दिये। अपने लाभाश का अधिकाश मैं तु
दूँगा।"

"आप अपने पुण्यो से सफल हुए हैं।" पुण्यपाल ने कहा—"जल-दस्युओ से जहाजो की रक्षा करना तो मेरा कर्त्तव्य था, क्योकि मैं आपका वेतनभोगी सेवक हूँ।"

"सेवक कहकर मुझे लज्जित मत करो।" पुष्पदत्त बोला—"तुम्हें छोडकर शेष छह सेवक है और तुम मेरे मित्र हो। खैर, अब काम मे लगें। यहाँ माल अच्छा बिक जाएगा।"

मजदूरो ने सातो जहाजो का माल किराये के गोदामो मे भरवा दिया। पुण्यपाल को साथ लेकर पुष्पदत्त राजा शूरसेन की सभा मे गया। राजा को भेंटादि देकर माल बेचने की अनुमति प्राप्त कर ली। यथासमय दोनो अपने डेरो पर आकर सोये।

सवेरे पुण्यपाल अकेला नगर-भ्रमण को निकला। श्रीपुर के बाजार बड़े सुन्दर थे। पंक्तिबद्ध दुकानो को देखते हुए पुण्यपाल एक चौराहे पर पहुँचा तो राजा की घोषणा सुनी। पुण्यपाल ने सोचा, 'जरूर यह ताम्रपत्र ब्राह्मी लिपि मे अंकित होगा। मैं तो उसे पढ ही लूंगा। ब्राह्मी लिपि से प्राचीन दूसरी कोई लिपि नही है।'

यह सोचकर पुण्यपाल उद्घोषक के पास पहुँचा और बोला—
"मुझे राजा के पास ले चलो। मैं ताम्रपत्र पढूंगा।"

"राजकुमारी का नाम सुनकर मुंह मे पानी भर आया होगा।" उद्घोषक ने नीचे से ऊपर तक पुण्यपाल को देखकर कहा—"देवो की लिपि को कोई मानव कैसे पढ सकता है? बहुत आये, अपनी हँसी कराकर चले गये। तुम भी कोशिश कर लो।"

"जो चीज समझ मे नही आती, लोग उसे देवमाया कहकर टाल देते है।" पुण्यपाल ने हँसकर कहा—"तुम्हारा ख्याल है कि किसी देवता ने ताम्रपत्र अंकित करके गाडा होगा? यदि ऐसी ही बात है तो भी वह मानव के लिए गाडा गया है। अत उसे कोई मानव ही पढेगा।"

"तुम्हारी बातें मेरी समझ से बाहर हैं।" उद्घोषक ने कहा—"लेकिन एक बात मेरी समझ में अवश्य आती है कि यदि राज प्रतिज्ञाबद्ध न होता तो वह राजकुमारी का विवाह तुम्हारे सा अवश्य कर देता। लगता है तुम भी किसी देश के राजकुमार हो।"

पुण्यपाल ने कोई उत्तर न दे राजसभा की ओर जाने उतावली दिखाई। उद्घोषक उसे अपने साथ ले गया। दरबार उसके रूप पर मोहित हो उठे। राजा शूरसेन अभी सभा में नह आया था। मन्त्री ने उसे अतिथि पंक्ति में बैठाया।

यथासमय राजा सिंहासन पर विराजा। ताम्रपत्र की बा चली। राजा ने ताम्रपत्र पुण्यपाल के सामने रख दिया। पुण्यपाल पहले तो उसे मन-ही-मन कुछ अटक-अटक कर पढ़ा। फिर राज को सुनाकर बोला—

"इसे लेकर वहीं चलें, जहाँ यह निकला है। तभी इसक पढ़ना सार्थक होगा।"

"यह क्या बात?" राजा बोला—"अधखुदे तालाब के पा जाकर क्या इसमें कुछ और लिख जाएगा? इसमें जो लिखा है, उ यहीं क्यों नहीं पढ़ देते?"

"यहाँ पढ़ने में एक ही आपत्ति है।" पुण्यपाल बोला—"व यह कि यहाँ मैं प्रमाण नहीं दे पाऊँगा। यहाँ पढ़ने से आप कैसे मा लेंगे कि जो पढ़ा है, इसमें वही लिखा है। फिर भी मैं यहीं प देता हूँ।"

पुण्यपाल ने पढ़ना शुरू किया—

"यह धरती रत्नगर्भा है। इसमें रत्न भरे पड़े हैं। लेकिन य लक्ष्मी पुण्यात्मा की ही निधि है। यदि कोई पापी इस वसुन्धरा भाग गाड़े और वहाँ फिर खोदे तो उसका धन कोयला बन जाता है

लेकिन यदि पुण्यात्मा खोदे तो उसे दूसरे का गडा धन भी सहज मे मिल जाता है।

"मेरा यह धन युगो बाद या कभी भी किसी पुण्यात्मा को मिलेगा। जिसे यह धन मिलना होगा उसे पहले यह ताम्रपत्र मिलेगा। इसमे लिखे निर्देशो के अनुसार खुदाई करने पर चार बड़े कलश रत्नो से भरे मिलेंगे।

"मैं कचनपुर का अरबपति सेठ था। बहुत-सा धन मैंने दान में बाँटा। ये चार कलश माँ वसुन्धरा को भेंट कर दिये कि अपने किसी सपूत को देना।

"अब खुदाई का निर्देश पढो—

"जहाँ यह ताम्रपत्र मिला है, उसी स्थान पर बीस हाथ गहरा और खोदो। फिर उसी सतह तक बीस हाथ पूर्व दिशा मे खोदते चलो। बीसवे हाथ की सीमा पर चार-चार हाथ चारो ओर खोदो। फिर उस वर्गाकार स्थान को चार हाथ और खोद डालो। चारो कलश मिल जाएँगे।"

ताम्रपत्र सुनते ही सब अवाक् रह गये। मत्री के मुँह से निकला—

"तो कभी यहाँ कचनपुर नाम का नगर होगा? उसी स्थान पर आज श्रीपुर नगर बस गया है।"

"कुछ भी हो, यह तो बडा अद्भुत रहस्य रहा।" राजा सुरसेन ने कहा—"अब तो प्रमाण भी मिल जाएगा।"

राजा ने पुण्यपाल को देखा और सिंहासन से उठकर उसका हाथ पकड अपने पास लाकर बोला—

"जामाता! तुम्हारा स्थान अब यही है। अब तो तुम्हे ही यहाँ का राजा बनना है। मेरे कोई पुत्र नही। अब तुम्ही मेरे पुत्र हो और तुम्ही मेरे जामाता हो।"

पुण्यपाल को कनकमंजरी की याद आ गई। उसने विवाह से पिण्ड छुड़ाने के लिए कहा—

"राजन् ! मेरे स्वामी ही आपके जामाता बनने के योग्य हैं। रत्नपुर के युवा श्रेष्ठी पुण्यदत्त मेरे स्वामी हैं। मैं तो उनका तुच्छ सेवक हूँ।"

"सेवक स्वामी भी बन जाता है।" राजा बोला—"अब तुम सौभाग्यमंजरी के स्वामी हो। उसका विवाह तो तभी हो गया था जब तुम ताम्रपत्र पढ़ रहे थे। मुझे कुछ मत बताओ। न मैं तुम्हारा वंश जानना चाहता हूँ और न कुल। बस अपना नाम बता दो।"

"इस नगण्य को पुण्यपाल कहते हैं।"

पुण्यपाल की जय-जयकार होने लगी। उसे लेकर राजा अपने गुदे तालाब पर गया। यथानिर्देश खुदाई की गयी तो रत्नों से भरे चार कलश निकले। राजा ने सबके सामने कहा—

"भाइयो ! ताम्रपत्र में लिखा है कि मेरा धन युगों बाद किसी पुण्यात्मा को मिलेगा। सो पुण्यात्मा तो पुण्यपाल ही हैं। यह धन मुझे नहीं, इन्हीं को मिला है। इनके आने से पहले तो ताम्रपत्र मेरे लिए मात्र एक धातु का टुकड़ा था। अब यह धन मैं कैसे ले सकता हूँ ? उनकी चीज इन्हीं को मिलनी चाहिए।"

'बिना अधिकार के मैं भी कैसे लूंगा ?" पुण्यपाल ने कहा—"आपकी धरती से निकला है, इसलिए यह धन आपका ही हुआ। धरती का स्वामी राजा होता है।"

तालाब पर खड़ी भीड़ में पुण्यदत्त भी था। उसने पुण्यपाल का हाथ दबाया और धीरे-से कहा—

"पुण्यपाल ! तुम मूर्खों के भी मूर्ख हो। आये धन को क्यों ठुकराते हो ? स्वीकार कर लो। आधा-आधा बाँट लेंगे।"

पुण्यपाल ने मन-ही-मन पुष्पदत्त की वणिक वृत्ति को धिक्कारा और उससे कुछ न कह राजा से ही पुनः कहा—

'राजन् ! इस धन का एक और विकल्प है। यह तालाब प्रजा के निमित्त था। अतः यह धन प्रजा का हो गया। तालाब बनने के बाद जो बचे, सो प्रजा में बँटवा दो।'

सभी ने एक स्वर में पुण्यपाल की बात को स्वीकार किया। प्रजा की धरोहर के रूप में फिलहाल चारों कलश राजकोष में रखवा दिये गये। सरोवर की खुदाई का काम पुनः चालू हो गया और उस सरोवर का नाम 'पुण्य-सर' रख दिया गया।

अब सौभाग्यमंजरी के विवाह की तैयारियाँ शुरू हो गईं। शुभ मुहूर्त निकाला गया। विधि-विधान से रति-सी रूपसी सौभाग्य-मंजरी के साथ पुण्यपाल का विवाह सम्पन्न हो गया। पुण्यपाल अब राज-जामाता था। पत्नी के साथ वह आनन्द से रहने लगा। उसने पुष्पदत्त के सभी व्यापारिक कर माफ करा दिये थे। पुष्पदत्त ने अपना सब माल बेच दिया और श्रीपुर का माल खरीदकर सातों जहाज भर लिये तो पुण्यपाल से कहा—

"पुण्यपाल ! तुम राज-जामाता बन गये तो क्या अपने स्वामी को भी भूल गये ? तुम मेरे साथ क्यों आये थे, यह तो याद ही होगा ?"

"सब कुछ याद है।" पुण्यपाल बोला—"राज-जामाता क्या, राजा होकर भी मैं तुम्हारा सेवक हूँ। आज मैं जो बना हूँ तुम्हारे कारण बना हूँ।"

"लेकिन मैं तो कुछ नहीं बना।" पुष्पदत्त ने रूठे हुए स्वर में कहा— 'रत्नपुर लौटने तक तुम्हें मेरा साथ देना है। इसीलिए मैं तुम्हें साथ लाया था।"

"जहाँ-जहाँ तुम जाओगे मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। तुम्हें सकुशल रत्नपुर पहुँचाकर ही मैं अपना कोई काम करूँगा।"

पुष्पदत्त को आश्वासन दे, पुण्यपाल ने राजा शूरसेन से प्रस्थान की अनुमति मांग ली। पत्नी सौभाग्यमंजरी को भी समझा दिया। उसे पिता के पास छोड़ पुण्यपाल ने पुष्पदत्त के साथ प्रस्थान किया। सातों जहाज किसी द्वीप की ओर बढ़ रहे थे। श्रीपुर में पुष्पदत्त ने काफी लाभ कमाया था। रत्नपुर लौटने तक वह अन्य देशों से लाभ कमाना चाहता था।

पुष्पदत्त के जहाज एक अनजाने देश के नगर सोपारपुर पहुँच गये। जहाज के लंगर डालते हुए पुष्पदत्त ने पुण्यपाल से कहा—

"जाना तो सिंहलद्वीप था, जहाँ कि रत्नों की खानें हैं लेकिन भाग्य अपने किस नगर में ले आया।"

"भाग्य साथ देगा तो यहाँ भी धन उपार्जन होगा।" पुण्यपाल ने कहा—"यहाँ के बाद सिंहलद्वीप ही चलेंगे।"

इस तरह बातचीत करते हुए समुद्र के तट पर ही पुष्पदत्त ने तम्बू लगवा दिये। माल अभी जहाजों में ही भरा था। क्योंकि मण्डी-बाजार के हाल-चाल देखकर ही माल उतरवाने का निश्चय था।

6

समुद्रतट पर वसा सोपारपुर ठगो का नगर था। उस नगर मे कोई व्यापारी आता नही था, क्योकि यहां के ठगो की चर्चा दूर-दूर तक फैल चुकी थी। फिर भी भाग्य का मारा भूला-बिसरा कोई व्यापारी आ भी जाता तो यहां के लोग बडे चातुर्य और बुद्धिकौशल से व्यापारी का धन हडप लेते थे। पुष्पदत्त भी भाग्य का मारा ठगो के नगर सोपारपुर मे आ लगा था।

सोपारपुर की प्रजा ही ठग नही थी, राजा और अधिकारी भी धूर्त तथा ठग थे। वक्रगति यहां का राजा था। काणा यहां का पुरोहित था और माया मे प्रवीण कुबुद्धि नाम का कोषाध्यक्ष था। क्रूर यहां का अधिकारी था। ऐसे लोगो के नगर मे समुद्रतट पर पुष्पदत्त के सातो जहाज लगे थे।

सवेरा हुआ। पुष्पदत्त पुण्यपाल के साथ बैठा बाते कर रहा कि तभी क्रूर नामक रक्षक कुछ सैनिको के साथ आया और आते ही बोला—

"इन जहाजो का स्वामी कौन है ?"

"कहिए, क्या आज्ञा है ?" पुष्पदत्त ने विनम्रता से कहा—"ये सातो जहाज मेरे है।"

"हमारे नगर का नियम सुन लो।" नगररक्षक क्रूर ने कहा—"जो भी व्यापारी यहां आता है, वह पहले राजा का पट्ट हस्ती

तौलता है, तब नगर में क्रय-विक्रय कर पाता है। अतः तुमको भी पहले हाथी तौलना पड़ेगा। यदि नहीं तौलोगे तो तुम्हारे मालो जहाज छीन लिये जायेंगे। हाथी तौलना जरूरी ही नहीं अनिवार्य है क्योंकि ऐसा न करने पर नगर की देवी हम पर रुष्ट हो जाती है।'

इतना कह नगर-रक्षक आगे बढ़ गया। अब तो पुण्यदत्त की हवाइयाँ उड़ने लगीं। उसने पुण्यपाल से कहा—

"अब क्या होगा? यह दुष्ट हाथी लेकर पुनः आयेगा। हाथी को मैं क्या तौल पाऊँगा, लगता है सातों जहाज देने पड़ेंगे।"

"तुम चिन्ता मत करो।" पुण्यपाल ने कहा—"हम राजा के पास जाकर कहेंगे कि यह कैसा अंधेर है कि एक तो असम्भव कार्य कराये और न करने पर अपना माल दे।"

पुण्यदत्त कुछ कहता कि तभी काणा पुरोहित आ गया। उसने अपने जासूसों से पुण्यदत्त का नाम-धाम पहले ही मालूम कर लिया था, सो आते ही कहा—

"पुण्यदत्त! तुम खूब आये। तुम न आते तो मुझे तुम्हारे नगर रत्नपुर जाना पड़ता। अब अपनी दस हजार स्वर्णमुद्राएँ मुझसे ले लो।"

"मेरी मुद्राएँ?" पुण्यदत्त ने आश्चर्य से कहा—"पहला आश्चर्य तो यह कि आप मुझे जानते हैं। दूसरा यह कि दस हजार स्वर्णमुद्राएँ आप मुझे किस बात की देना चाहते हैं।"

"ऋण देना ही पड़ता है भैया!" काणा पुरोहित बोला—"किसी का ऋण मारकर मरो तो नरक मिलता है और फिर दूसरे जन्म में देना भी पड़ता है। एक बार मैं तुम्हारे नगर रत्नपुर गया था। मुझे धन की जरूरत पड़ी, सो तुम्हारे पिता से दस हजार मुद्राएँ उधार ली। अब मैं आया। धरोहर वापस लेकर तुम्हारा ऋण चुका देना चाहता हूँ।"

"पुष्पदत्त ! तुम्हारे पिता ने मेरी मजबूरी का खूब फायदा उठाया। मेरी आँख गिरवी रखकर मुझे ऋण दिया। अब मेरी आँख वापस कर दो और अपना ऋण ले लो। वरना मैं तुम्हारी आँख लिये बिना नही रहूँगा। मैं अभी आता हूँ। आँख रख लेना।"

यह कह काणा पुरोहित चलता बना। अब तो पुष्पदत्त का चेहरा फक पड गया। करे तो क्या करे ? हाथी न तुले तो भी धन हाया। आँख कहाँ से दूँगा। यह दुष्ट भी जाने क्या लेगा। यों पुष्पदत्त को चिंतित देख पुण्यपाल ने कहा—

"सेठजी ! चलो राजा के पास चलते है। इन ठगो से राजा ही मुक्त करा सकता है।"

पुण्यपाल और पुष्पदत्त राज दरबार की ओर चले ही थे कि इतने मे ही एक ठग और आ गया। वह सोपारपुर का ही कोई व्यापारी था। आते ही उसने कहा—

"अरे भाइयो ! मैं तुम्हारे ही हित की बात कहने आया हूँ। यह नगर ठगो का नगर है। जब तक तुम्हारे पास माल रहेगा, ठग आते ही रहेगे। यहाँ का राजा भी उन्ही का समर्थन करेगा।"

"तुम भले आदमी लगते हो।" पुष्पदत्त बोला—"दो ठग तो हमारे पास आ चुके है। इनसे बचने का कुछ उपाय बताओ।"

"गुड होगा तो मक्खियाँ आयेगी ही।" कपट नामक व्यापारी ने कहा—"तुम अपने माल का सौदा कर लो। सातो जहाजो का माल मुझे विनियम मे दे दो। यानी मैं माल के बदले माल दे दूँगा।"

"माल कब दोगे ?" यह प्रश्न पुण्यपाल ने किया—"कब दोगे माल और क्या दोगे ?"

व्यापारी बोला—

"जब जाने लगो तब ले लेना। माल तुम जो चाहो ले लेना। लेकिन माल हम वही देंगे, जो हमारे पास होगा।"

"ठीक है।" पुण्यदत्त बोला—"हमें सौदा मंजूर है।"

"तो फिर माल मेरा हुआ।" कपट व्यापारी ने कहा—"मैं सेवक भेजता हूँ, वे माल ले जाएँगे।"

इसी बीच काणा पुरोहित और क्रूर नामक नगर-रक्षक एक साथ आये। क्रूर हाथी तोलने की बात कहने लगा और अपनी आँख के लिए ऊधम मचाने लगा। पुण्यपाल ने कहा—

"आप सब लोग राजा के पास चलें। राजा ही हमारा [illegible] करेगा।"

काणा पुरोहित और क्रूर नगर-रक्षक—दोनों ही यह [illegible] थे कि राजा के पास चलें। क्योंकि वे जानते थे कि सदा की [illegible] राजा हमारे पक्ष में ही निर्णय करेगा। अत: काणा पुरोहित, नगर-रक्षक, कपट व्यापारी, पुण्यपाल और पुण्यदत्त पाँचों [illegible] प्रतिवादी सोपारपुर के राजा वक्रगति के राज दरबार में [illegible] सबने अपनी-अपनी बात कही। राजा ने सबकी बात ध्यान से [illegible] और पुण्यदत्त से कहा—

"हे श्रेष्ठी! हाथी तुलवाना हमारी विवशता है। यदि हाथी नहीं तोल सके तो नगर की देवी मेरे नगर को भस्म कर दे[illegible] अत: अपने नगर को बचाने के लिए मैं हाथी न तोलने का उसका माल ले लेता हूँ।"

अब बोला पुण्यपाल—

"पुरोहित जी! हम आपका हाथी तोलेंगे। आप हाथी [illegible] [illegible]।"

राजा चकराया। बोला—

"पर पहले इस पुरोहित को आँख तो दे दो। इस हाथ अपना ऋण लो और उस हाथ इसकी आँख दो।"

"यह काना झूठ बोलता है।" पुष्पदत्त ने क्रोध में कहा—"मेरे पिताजी इतने क्रूर नहीं हैं कि आँख गिरवी रखकर ऋण दें।"

"आँख वाली बात सही है।" पुण्यपाल बोला—"हमारे सेठ पुष्पदत्त को पूरी जानकारी नहीं है। मैं इनके पिता का पुराना सेवक हूँ। इनके पिता आँखें गिरवी रखकर ऋण देते हैं।"

"यह तुम क्या कहते हो ?" पुष्पदत्त ने पुण्यपाल को कड़ी नजरों से घूरा—"तुम मेरे सेवक हो या दुश्मन ? तुम भी झूठ बोलते हो।"

पुण्यपाल ने पुष्पदत्त का हाथ मसक दिया, यानी चुप रहो, कुछ मत बोलो। इधर काना तो पुण्यपाल के पैरों में गिर पड़ा और बोला—

"तुम देवता हो। मेरी आँख मुझे वापस करा दो। गिरवी की वस्तु न लूं तो मेरे कुल को बट्टा लग जाएगा कि एक आँख भी न छुड़ा सका।"

"आपकी आँख मिलेगी।" पुण्यपाल ने काणे से कहा—"मुझे राजा से पूरी बात कह लेने दो।"

"हाँ तो राजन् !" पुण्यपाल ने वक्रगति राजा से कहा—"राजन् ! पुष्पदत्त के पिताजी श्रीदत्त रत्नपुर में इस बात के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं कि वे बाहर से आये व्यापारियों को कुछ-न कुछ गिरवी रखकर ऋण देते हैं। किसी की पगड़ी रखकर ऋण देते हैं तो किसी की मूंछ का बाल रखकर ऋण देते हैं। आँखें भी उन्होंने बहुतों की गिरवी रखी हैं। मुझे तो पता था कि आँख वाले अपनी-अपनी

आंखें मांगेंगे। गिरवी रखी चीज तो आबरू होती है। लोग सब [illegible] बेचकर भी मूंछ का बाल छुड़ाते है।

'तो राजन्! हमारा भी तो यह कर्तव्य है कि किसी वस्तु गड़बड़ न हो, अर्थात् किसी की चीज किसी और पर न [illegible] जाए। मेरे पास जो आंखों की मंजूषा है उसमे इन पुरोहितजी भी आख है तथा औरो की भी आंखें हैं। अतः मैं पहले इनकी [illegible] आख निकालूंगा और उसके बराबर तोलकर तथा मिलान कर इनकी आख छांटकर दूंगा।"

इतना कह पुष्पपाल ने चमचमाती हुई कटार निकाली [illegible] जाना ऐसा भागा कि फिर मुड़कर नही देखा। राजा भी [illegible] गया कि आज तो कोई गुरुओं का भी गुरु आया है। अब कप[illegible] नामक व्यापारी बोला—

"राजन्! इनका माल मुझे दिलाइये। बदले में मैं यह मा[illegible] दूंगा, जो मेरे घर में है। मेरा इनसे सौदा तय हो चुका है।"

"तुम्हारे घर में क्या-क्या माल है?" राजा ने व्यापा[illegible] कहा—"माल के नाम गिना दो, जो ये चाहेंगे बदले में ले [illegible] अपना माल तो इन्हें देना ही होगा।"

राजा ने सोचा था कि काने की पार पड़ी नहीं। अब मैं [illegible] सातों जहाजों का माल ले लूंगा क्योंकि कपट नामक व्यापारी राजा [illegible] का ही आदमी था। राजा के कहने पर [illegible] [illegible] अपने घर के माल के नाम बताये।—

"[illegible]! मेरे घर में रेत, मिट्टी के ढेर लगे हैं। [illegible] गोबर भी [illegible] [illegible]। [illegible] घास के अम्बार भी [illegible] [illegible] जो [illegible] अपने सातों जहाज भरके और [illegible] [illegible] मुझे [illegible] है। [illegible] है।"

राजा ने [illegible] को आज्ञा दिया—

"अपना माल इन्हे सौंप दो सेठ! न्यायदृष्टि से हमारे व्यापारी की बात सही है।"

"न्यायदृष्टि से हम सातो जहाज खाली करने को तैयार है। माल के बदले हम मच्छरो की हड्डियाँ लेंगे। आपके व्यापारी के यहाँ मच्छर भी तो है। मच्छरो का नाम इन्होने छिपाया था। माल अपनी इच्छा का लेगे, यह पहले तय हो चुका है।"

अब तो कपट नामक व्यापारी बगलें झाँकने लगा। इस बार भी पुण्यपाल की जीत हुई। अब हाथी तौलने की बारी थी। क्रूर नामक नगर-रक्षक सबके साथ हाथी लेकर समुद्र तट पर गया। हाथी नाव पर चढाया गया। जहाँ तक नाव पानी मे डूबी, वहाँ एक निशान लगा दिया गया। फिर हाथी नाव से उतारा तो नाव ऊपर उठ गई। अब पुण्यपाल ने नाव मे कंकड-पत्थर भरवाये। जब निशान तक नाव पानी मे डूब गई तो पत्थर भरना बन्द कर दिया। फिर नाव के सब कंकड-पत्थर निकालकर पुण्यपाल ने तुला पर तौल दिये और हाथी का वजन बता दिया।

पुण्यपाल के बुद्धि-चातुर्य से सभी दग थे। पुण्पदत्त तो जय-जयकार ही करने लगा। अन्त मे राजा वक्रगति ने पुण्यपाल से कहा—

"हे भद्र! ठगी तो बुद्धि का खेल होता है। इसमे न चोरी है, न लूट। हाँ, बुद्धि का दुरुपयोग अवश्य होता है। बुद्धि के इस खेल मे तुम हमसे ऊपर रहे। अत. हम तुम्हारा अभिनन्दन करते है।"

"मेरा अभिनन्दन तो तभी होगा, जब आप और आपके अधिकारी लोग ठगी बद करें।" पुण्यपाल बोला—"इस बुद्धि को परोपकार मे लगाकर भी तो आप लाभान्वित हो सकते है।"

"अब ऐसा ही होगा।" राजा वक्रगति ने प्रतिज्ञा की—

' आज से ठगी नहीं होगी। तुम भी आगे जाओ तो, जो-जो व्यापा मिलें, सबसे कहते जाना कि अब सब सोपारपुर मे आयें। अब य साथ ठगी का व्यवहार नहीं होगा।"

यह कह राजा वक्रगति ने एक सहस्र स्वर्णमुद्राएं पुष्पदा को दीं। पुष्पदत्त ने अपना माल यहां नहीं बेचा, क्योंकि भाव गि हुए थे। अतः माल से भरे सातों जहाज लेकर पुष्पदत्त ने सोपार से सिंहलद्वीप के लिए प्रस्थान किया। पुण्यपाल के पुण्यों से ही अ पुष्पदत्त सकुशल बच निकला था, वरना ठगों ने तो उसे अपने प में कस ही लिया था।

7

सिहलद्वीप के राजनगर का नाम सिहलपुर था। यहाँ के राजा थे सिहलसिह। इस देश मे रत्नो का बाहुल्य था। यहाँ के हाथी भी बहुत प्रसिद्ध थे। रत्नो के लिए ही यहाँ व्यापारी आते थे, क्योकि उनके माल का विक्रय भी रत्नो मे होता था। लेकिन यहाँ तक आना भी मौत से लडकर आना था। इसलिए भाग्यवान और साहसी व्यापारी यहाँ तक आ पाते थे।

राजा सिहलसिह के राजकोष मे यो तो अपार रत्न थे। पर आठ रत्न उनके पास ऐसे दिव्य प्रभाव वाले थे, जो अत्यन्त दुर्लभ थे। ये रत्न राजा के पूर्वजो के थे। कमाल की बात यह थी, अभी तक इन रत्नो के गुण-प्रभाव की परख नही की गई थी। क्योकि राजा ने इसकी जरूरत ही नही समझी थी। एक दिन राजा सिहल-सिह के मन मे विचार आया कि अपने पूर्वजो के रत्नो की परख कराकर यह तो जानूँ कि किस रत्न मे क्या प्रभाव है।

एक दिन राजा सिहलसिह ने अपने नगर के प्रसिद्ध रत्न-पारखी बुलाये। रत्नो की मजूषा उनके सामने रखकर कहा—

"ये दुर्लभ रत्न मेरे प्रपितामह, यानी पितामह के भी पिता के युग के है। आज मैं यह जानना चाहता हूँ कि किस रत्न मे क्या गुण है।"

पारखी परख करने मे लग गये। पूरा दिन बीत गया, पर

कोई निर्णय नहीं लिया जा सका। दूसरे दिन फिर परख हुई। रत्न पारखियों ने आपस में विचार-विमर्श करके एक स्वर से कहा—

'राजन्! इनमें ये चार नकली हैं और ये चार असली हैं। इससे अधिक हम नहीं जान पाये। क्योंकि ऐसे दिव्य रत्न [illegible] पहली बार देखे हैं।"

राजा उदास हो गया। उसने चार-चार रत्न दो मंजूषाओं में रखवाये और अपने मंत्री से कहा—

"अब तो मैं इन रत्नों के गुण जानकर ही रहूंगा।

"मंत्री! नगर में घोषणा करा दो कि जो भी इन रत्नों [illegible] प्रभाव प्रमाण सहित बतायेगा, मैं अपनी बहिन तिलकमंजरी [illegible] विवाह उसके साथ कर दूंगा।"

मंत्री मतिसार ने राजाज्ञा का पालन किया और इस प्रकार की राजघोषणा सिंहलपुर नगर में करा दी। भाग्य [illegible] पुण्यपाल भी आ चुका था। उसके साथी श्रेष्ठी पुष्पदंत [illegible] जहाज घोषणा के तीन दिन पहले ही सिंहलपुर के बंदरगाह पर आकर लगे थे। उनका सब माल किराये के गोदामों में भरा जा चुका था। पुष्पदंत से अनुमति ले पुण्यपाल नगर भ्रमण कर रहा था और जब उसने राजा की उक्त घोषणा सुनी तो पटह का स्पर्श कर दिया।

पटहवादक पुण्यपाल को लेकर राज-दरबार पहुंचा। राजा [illegible] ने ऊपर [illegible] देखा और उसके रूप तथा आकर्षक व्यक्तित्व [illegible] को आसन दिया। चार-चार रत्नों की मंजूषाएं पुण्यपाल [illegible] सामने थीं। पुण्यपाल ने दोनों ओर के रत्नों को देखकर कहा—

'राजन्! इनमें ये चार रत्न असली हैं और ये चार नकली हैं।"

सुनते ही राजा झल्ला पड़ा और बोला—

"कभी पहले भी रत्न देखे हैं? बस, रहने दो कर चुके परख!

"अरे भाई! जिन्हें तुम असली कह रहे हो, मेरे रत्न-पारखियों ने इन्हीं को नकली बतलाया है। जो बात अनेक रत्न-पारखियों ने एक स्वर में कही, तुम उसी का उल्टा कह रहे हो?"

"रत्नों का निर्णय बहुमत से नहीं होता राजन्!" पुण्यपाल बोला—"प्रमाण से होता है। बहुमत से ये जो चार रत्न असली बताये गये हैं, इसका प्रमाण क्या दिया आपके परखकर्त्ताओं ने? मैं कहता हूँ कि ये नकली हैं और मैं तो प्रमाण भी दूँगा।"

"अरे, तो तुम प्रमाण भी दोगे।" अब तो राजा भौचक्का हो गया। शर्मिन्दा-सा होकर बोला—"मुझे क्षमा करना भद्र! तुम्हीं मेरी निराशा दूर कर सकते हो।"

बस अब पुण्यपाल ने प्रमाण देना शुरू किया। उसने कहा—

"राजन्! चोट मारने पर असली रत्न उचटकर अलग जा गिरेगा और नकली चूर-चूर हो जाएगा।"

पुण्यपाल ने करके दिखाया तो नकली रत्न चूर्ण बन गया। असली उचटकर दूर गिरा। दूसरे की परख हुई। नकली डूबकर पानी में बैठ गया और असली तैरता रहा। असली नकली का सही वर्गीकरण देख राजा ही नहीं, सारी सभा दंग रह गई। अब उसने नकली रत्न फेंक दिये और असली रखे। राजा ने कहा—

"रत्न-पारखियों का भरोसा कर यदि मैं नकली मानकर असली रत्नों को फेंक देता तो मेरे हाथ क्या रहता?

भद्र! अब इन चारों रत्नों के गुणादि भी बता दो।"

"आपके ये चारों रत्न बहुत दिव्य हैं।" पुष्पपाल ने कहा—"मैं एक-एक के गुण बताता हूँ।"

पुष्पपाल ने अन्न के कुछ दाने मँगवाये। वे दाने एक स्था[illegible] पर बिखेर दिये तो कबूतर और अन्य पक्षी दाना चुगने लग[illegible] पुष्पपाल ने एक रत्न दानों के बीच में रख दिया तो सब पक्षी [illegible] हट गये और डरे-डरे से दानों को दूर से देखने लगे। दाना चु[illegible] का साहस किसी का नहीं हुआ। जब पुनः रत्न हटा दिया तो पक्[illegible] पुनः दाना चुगने लगे। रत्न फिर रखा तो पक्षी फिर हट गए। यह चमत्कार सभी बड़ी हैरत से देख रहे थे।

पुष्पपाल ने रत्न राजा को देकर कहा—

"राजन्! इस रत्न को वर्द्धक रत्न कहते हैं। इसके र[illegible] अन्न का भण्डार और राजकोष कभी नहीं घटेगा, बल्कि बढ़ता [illegible] जाएगा। इसी तरह अन्य तीनों का प्रभाव सुनिये।

"राजन्! इस दूसरे रत्न को पास रखने से युद्ध में किसी [illegible] शस्त्र का घाव नहीं होगा। तीसरे रत्न का प्रभाव यह है कि इस[illegible] पास रखने से जल में डूबने से बचा जा सकता है। चौथा रत्न [illegible] निवारक रत्न है। सर्प, बिच्छू आदि का कैसा ही विष हो, [illegible] रत्न को पानी में भिगोकर आप पिलायेंगे तो पिला दें तो वह स[illegible] निर्विष हो जाएगा। इनकी परख तो समय पर ही हो सकेगी।"

चारों रत्नों के गुण और प्रभाव राजा सिंहलसिंह ने [illegible] लिये। सभा में पुष्पपाल की जय-जयकार होने लगी। उसे अधि[illegible] सम्मान [illegible] गया तो उसने राजा से कह दिया कि मैं [illegible] [illegible] हूँ। उन्हीं के साथ डेरे पर रहूँगा।

[illegible] के विवाह [illegible] पुष्पपाल ने [illegible] [illegible] विवाह [illegible] पुष्पदत्त के साथ [illegible] [illegible] राजा [illegible] कैसे मान [illegible]? उसने [illegible]

न तिलकमंजरी का विवाह बड़ी धूमधाम के साथ पुण्यपाल से कर या।

पुण्यपाल अपनी नवप्रिया तिलकमंजरी के साथ सानन्द रहने ा। एक भव्य भवन मे उसे आवास मिला। इधर पुण्यदत्त के ी कर माफ हो गये। उसका माल भी खूब बिका। राजा हलसिंह उसका भी आदर-सम्मान करता था। सेठ पुण्यदत्त संध्या ' प्राय' राजा के साथ बैठा करता था।

पुण्यपाल के पलटते दिनो को देखकर पुण्यदत्त को जलन होने ी। उसने सोचा, 'समय का मारा, फटेहाल और भोजन के लिए ' मुंहताज पुण्यपाल रत्नपुर मे मेरे पास आया था। भोजन की वस्था मैंने की। वेतन पर रखा। मेरा वेतनभोगी सेवक क्या से ा हो गया? श्रीपुर के राजा शूरसेन की पुत्री सौभाग्यमंजरी इसे ी। वहाँ के राज्य का उत्तराधिकारी भी यह बन गया। यहाँ कर सिंहलसिंह की बहिन तिलकमंजरी भी इसे मिल गई। यहाँ दहेज का धन और तिलकमंजरी लेकर यह मेरे साथ जायेगा तो ; मेरा मालिक लगेगा और मुझे लोग इसका नौकर समझेंगे तब ? र मैं यही इसका पतन करूंगा।'

ईर्ष्या क्या नही कराती? ईर्ष्यालु अपने लाभ के लिए नही ला, बल्कि दूसरे की हानि के लिए बलिदान हो जाता है। दत्त ने भी पुण्यपाल को गिराने का निश्चय कर लिया।

एक दिन की बात। राजा सिंहलसिंह के साथ पुण्यदत्त अकेला ा था। होनहार की बात कि राजा ने ही पुण्यपाल की बात छेड़ '। उसने पूछा—

"हमारे बहनोई पुण्यपाल तो बहुत गुणी निकले। ये तुम्हारे ी कब से नौकरी करते है। घर मे कौन-कौन है, तुम्हे तो सब लूम होगा ?"

"और बातों का क्या होगा राजन् ?" पुण्यदत्त बोला। "आपको तो पुष्पमाल से काम है। पानी पीकर जाति पूछना ठीक होता है ? अब कुछ न पूछें, वही ठीक है।"

राजा की उत्सुकता बढ़ी। उसने कहा—

"नहीं-नहीं, मुझे सब कुछ बताओ।"

पुण्यदत्त को इच्छापूर्ति का वातावरण बन गया। गम्भीरतापूर्वक कहा—

"महाराज ! अन्दर बहुत-सी कलाएँ सीख लेता है तो … वह कुलीन हो जाता है ? नट बहुत-सी अनोखी कलाएँ जानता … तो क्या वह बहुत ऊँचा हो जाता है ?

"जब आपने पूछा है तो कहना ही पड़ेगा। पुष्पपाल … से मेरे यहाँ रहा है। बुद्धि का तेज है, सो रत्नों की परख … गया। मेरे यहाँ रत्नों की क्या कमी है। पर है सो जाति का … इसके माता-पिता बचपन में ही मर गये थे। अनाथ जानकर … पिता ने इसे नौकर रख लिया। लेकिन यह फिर भी … बुद्धि का तेज है।"

"हाय-हाय ! मैं तो लुट गया।" राजा ने अपना … पीटा—"अपनी फूल-सी बहन … [illegible]"

ा सच्ची भी है तो भी पुष्पदत्त यदि पुण्यपाल का हितैषी होता कदापि नही बताता। अब मैं पूरी छान-बीन करूंगा।'

मंत्री मतिसार अब पुण्यपाल के पास उठने-बैठने लगा। बातो बातो मे उसने पूछा—

"जागाता! आपके पिताजी को दिवगत हुए कितने दिन हो ?"

"क्या कहते हो तुम ?" पुण्यपाल कुछ क्रुद्ध होकर बोला—ारे माता-पिता—दोनो जीवित है। समय की बात है कि मैं ासे दूर हूँ।

"मंत्रिवर! वत्सदेश मे विराटनगर नामक एक नगर है। ाँ के राजा है जितशत्रु। उन्ही के महामंत्री सुबुद्धि मेरे पिताश्री । माता है, कमलावती। लेकिन आपको यह सदेह कैसे हुआ मेरे पिता . ?"

"आपके सेठ पुष्पदत्त ने ही विष-बीज बोया था।" मंत्री ना—"अच्छा हुआ बीज नही उग पाया। उसने आपको जाति नाई बताया था और कहा था कि आपके माता-पिता बचपन ही . ?"

"अब मै उसी से सच उगलवाऊँगा।" पुण्यपाल मंत्री मतिसार ा लेकर पुष्पदत्त के पास गया और बोला—

"पुष्पदत्तजी! मेरे साथ चलो। राजा के सामने मैं आपके ज काटूंगा। आखिर नाई हूँ तो नाई का काम भी करूँ।"

पुष्पदत्त को ऐसी आशा कदापि नही थी। वह थर-थर कांपने गा। पुण्यपाल के पैरो मे गिरकर क्षमा मांगने लगा। पुण्यपाल कहा—

"तुम मेरे नही, मेरे साले राजा सिहलसिह के अपराधी हो। ा. चलकर उन्ही से क्षमा मांगो।"

डरता-सकुचाता पुष्पदत्त राजा के पास पहुँचा। सब हकीक मंत्री मतिसार ने राजा को बता दी। पुष्पदत्त ने मौन होकर अपना अपराध स्वीकार किया। राजा को उल्टा पडते क्या देर थी। उस आदेश दिया—

"इस कृतघ्न का सब धन छीन लो और इसे प्राणदण्ड दिया जाय। ऐसे कृतघ्न व्यर्थ ही धरती का बोझ होते है।"

"धरती अपना बोझ स्वयं हल्का कर लेती है। कर्ता स्वय ही अपने कर्म का फल पाता है।" पुण्यपाल ने कहा—"राजन्! इसे क्षमा कर दो। क्षमा ही वीरो का भूषण है।"

राजा ने पुष्पदत्त को अभय कर दिया। पुण्यपाल की उदारता देखो, इतने पर भी वह पुष्पदत्त के साथ रत्नपुर तक जाने को तैयार था। सब कुछ पाकर भी पुण्यपाल अपने को पुष्पदत्त का सेवक ही समझता था। सेवक धर्म के नाते उसे पूरी समुद्री यात्रा तक पुष्पदत्त के साथ रहना था।

सातो जहाजो को सामान से भरकर पुष्पदत्त ने सिंहलपुर से चलने का विचार किया तो पुण्यपाल ने राजा सिंहलसिंह से साथ जाने की अनुमति मागी। तब राजा सिंहलसिंह ने समझाया—

"भगिनीपति! यह पुष्पदत्त तुम्हारा शत्रु है। इसने तुम्हें अनाथ और जाति का नाई बताया था। यद्यपि तुमने उसका अपराध क्षमा कर दिया है। फिर भी यह कृतघ्न और अनुदार है। अतः इसके साथ जाने का विचार सर्वांश मे त्याग दो। मार्ग मे यह तुम्हें धोखा देगा।"

"आप कहते तो ठीक है।" पुण्यपाल ने कहा—"लेकिन वचन के कारण तो सब हितो का त्याग किया जाता है। मैं रत्नपुर से पुष्पदत्त के साथ सेवक बनकर चला था। अत रत्नपुर तक उसका साथ देना मेरा कर्तव्य है।

"राजन् ! उपकार तो शत्रु का भी मानना चाहिये। मैं यहाँ तक आया, इसका श्रेय पुष्पदत्त को ही है। अतः मुझे साथ जाने की अनुमति दीजिये।"

राजा सिंहलसिंह ने विदा की तैयारियाँ की। सात जहाज दहेज मे दिये। सातो मे रत्न, मणि-मुक्ता, हाथी-घोड़े, सैनिक आदि भरे थे। तिलकमंजरी की सेवा के लिये दासियाँ भी दी। यथादिन चौदह जहाजों ने सिंहलपुर के बन्दरगाह से प्रस्थान किया। इनमें सात जहाज पुष्पदत्त के और सात ही पुण्यपाल के थे। चौदहों जहाजों का रुख श्रीपुर नगर की ओर था। वहाँ पुण्यपाल की पत्नी सौभाग्यमंजरी थी। पुण्यपाल उसे भी साथ लेकर रत्नपुर जाना चाहता था।



8

चौदहो जहाज श्रीपुर नगर के सागर-तट पर लगे। र
शूरसेन ने जाना कि मेरे जामाता पुण्यपाल आये है तो स्वागत
तैयारियाँ शुरू कर दी। सौभाग्यमजरी कदम्ब पुष्प की
रोमाचित हो उठी। बड़ी धूमधाम से पुण्यपाल का नगर-प्रवेश हु
तिलकमजरी और सौभाग्यमजरी सगी बहनो की तरह बड़े प्रे
मिली।

सौभाग्यमजरी ने कहा—

"बहन तिलकमजरी! तो ये तुम्हें लेने गये थे? बत
जाते तो क्या मैं रोक लेती? पर ये पुरुष बहुत छिपाते हैं।"

"छिपाया तो मुझ से भी था।" तिलकमजरी बोली—
ये मुझे लेने सिहलपुर नही गये थे। मै तो रत्नो की परख के
इन्हे पा गई। पारखी बड़े ऊँचे है।"

सौभाग्यमजरी हँसने लगी। हँसते-हँसते बोली—"प
ही नहीं, पढ़ने वाले भी एक ही हैं। मुझे तो ताम्रपत्र पढ कर
गये।"

इसी तरह दोनो अपनी-अपनी कहनी लगी। इन दोनो
पत्नियो को पाकर भी पुण्यपाल का ध्यान कनकमजरी मे लगा
था। इसीलिये वह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता था। इधर
शूरसेन ने एक दिन पुण्यपाल से कहा—

"जामाता ! अब मैं तुम्हारी एक नही सुनूंगा। मेरा क्या भरोसा, जाने कब दीक्षा ले लू। तुम यह राज्य सम्भालो।"

सब ने राजा के प्रस्ताव को सराहा। पुरोहित ने तुरन्त राज-तिलक का मुहूर्त निकाल दिया। यथादिन पुण्यपाल का राज्याभिषेक हो गया। अब वह श्रीपुर का राजा बन गया। उसे राजा बना देख पुष्पदत्त के हृदय पर तो सांप ही लोट गया। वह हाय-हाय करके माथा पीटने लगा कि 'हाय ! मेरा सेवक राजा बन गया और मैं इतना का उतना ही रहा। अब तो ऐसा पक्का उपाय करूँगा कि इसका सब कुछ मेरा होगा।'

पुण्यपाल राजा तो बन गया, पर रत्नपुर जाने की जल्दी उसे दो कारणो से थी। पहला कारण तो पुष्पदत्त के साथ वचनवद्धता का था और दूसरा कनकमजरी की सुधि लेना। दोनों पर विचार कर पुण्यपाल ने एक दिन पूर्व राजा शूरसेन से अनुमति मांगी—

"पूज्य ! कुछ दिन आप राज्य और सम्भालें। मुझे पुष्पदत्त के साथ रत्नपुर अवश्य जाना है। फिर मैं लौटूंगा।"

राजा शूरसेन राजी हो गया। उसने भी धन से भरे सात जहाज दहेज मे दिये। अब चौदह जहाज पुण्यपाल के ही थे। पुष्पदत्त का निजी जहाज पुण्यपाल के निजी जहाज से लगा-सटा चल रहा था। पुण्यपाल के निजी जहाज मे उसकी दोनों पत्नियाँ और दासियाँ थी। पुष्पदत्त एक दिन पुण्यपाल के जहाज मे कूदकर आया और बोला—

"मित्र ! रत्नपुर जाकर तो तुम मुझसे अलग हो ही जाओगे। यहीं तो कुछ दिन साथ चले। तुम मेरे जहाज मे नही आये तो मैं स्वयं ही चला आया।"

"यह तुमने बहुत अच्छा किया।" पुण्यपाल ने सच्चा प्रेम दर्शाते हुए कहा—"आज मेरे साथ ही भोजन करो। रत्नपुर मे भी

मैं तुमसे अलग कैसे रह सकता हूँ ? तुम्हारे सिवा वहां मेरा
है ? वह नगर भी मेरे लिये परदेश है।"

"मेरे घर को अपना ही समझना।" पुण्पदत्त बोला—'
छह हवेलिया है। एक हवेली मैं तुमको दे दूंगा।"

इसी तरह दोनो मे प्रेम की बातें होती रही। लेकिन एक
का प्रेम सरल-सात्विक था तथा पुष्पदत्त का प्रेम नाटकीय और
से भरा हुआ था। बातो ही बातो मे पुष्पदत्त की दृष्टि सौभाग्यम
और तिलकमजरी के सौन्दर्य पर पड़ी तो वह मन्मथ की आ
जलने लगा। भोजन तो किया, पर मन मे जहर घुलता रहा।
पीकर जब पुष्पदत्त उठा तो कहने लगा—

"पुण्यपाल ! कल दोपहर को तुम मेरे जहाज मे भोजन कर
मित्र का धर्म है कि मित्र के यहाँ खाये तो उसे खिलाए भी।"

पुण्यपाल ने निमन्त्रण स्वीकार लिया। पुष्पदत्त अपने ज
मे चला गया। सौभाग्यमजरी ने रात को पुण्यपाल से कहा—

"स्वामी ! मुझे पुष्पदत्त की दृष्टि मे खोट दिखाई देता
अतः तुम उसके जहाज मे हरगिज मत जाना।"

"यह दुष्ट तो इनसे जला बैठा है।" तिलकमजरी ने सम
किया—"हमारे यहाँ पुष्पदत्त ने इन्हे नाई बताया था। तब इ
दाल नही गली तो अब कुछ दुष्टता अवश्य करेगा।"

"स्त्री-स्वभाव बड़ा डरपोक होता है।" पुण्यपाल ने द
पत्नियो से कहा—"तुम दोनो व्यर्थ डर रही हो। यदि तुम्हारे पु
प्रबल है तो तुम्हारे सुहाग का बाल भी बांका नही होगा।"

पत्नियो को समझाकर पुण्यपाल सोया। दोनो उसके प
नापते हुए बाद मे सोई। सवेरा हुआ और जब दोपहर के भो
का समय हुआ तो पुण्यपाल पुष्पदत्त के पास जाने लगा। दूसरी न

। पत्नियों ने उसे फिर रोका। पर पुण्यपाल नहीं माना। होनहार प्रबल होती है।

दुष्टहृदय पुष्पदत्त ने पुण्यपाल को भोजन में नशीला पदार्थ ाकर खिलाया। खाते ही उसे शौच की प्रबल शंका हुई। वह ये पर शौच के लिये बैठना ही चाहता था कि पुष्पदत्त ने धक्का या। पुण्यपाल छपाक् से सागर में गिरा और गुडुप्-गुडुप् डूबने । पुष्पदत्त छाती पीटकर रोने लगा और मित्र के शोक में भी कूदने को उद्यत हुआ कि उसके सेवकों ने रोक लिया।

इधर तिलकमंजरी और सौभाग्यमंजरी ने सुना तो उनके तो ा ही निकल गये। उनसे रोया भी नहीं गया। शोक की अति से ो मूर्च्छित हो गईं। दासियों ने उन्हें शीतलोपचार से चैतन्य किया दोनों पछाड़ें खाकर रोने लगीं। बाल बिखर गये। कपड़ों का होश नहीं रहा। बड़ा ही कारुणिक रुदन था। काफी रो लेने के ही उनका शोक इतना कम हुआ कि कुछ सोच सकें।

दोनों के कुछ सामान्य होने पर पुष्पदत्त उसके पास पहुँचा र बोला—

"जो होना था, सो हो चुका। अब तो आपको अपना जीवन ना है। मैं आपको सब तरह का सहारा दूँगा। पुण्यपाल का ान मैं पूरा करूँगा।"

"तुझे तो मैं चुटकियों में उड़ा दूँगी।" तिलकमंजरी सिंहनी- गरज उठी—"रे दुष्ट! सिंहलपुर में भी तूने अपनी नीचता खाई थी कि मेरे स्वामी को नाई बताया था। तूने ही मेरे सुहाग ो लूटा है।"

"इतना क्यों दहाड़ती है?" पुष्पदत्त ने बेशर्मी की हँसी हँस- र कहा—"मैं जो चाहूँ सो कर सकता हूँ। लेकिन यह मेरी

भलमनसाहत है कि मैं तुम दोनो को सोचने विचारने का समय
रहा हूँ ।"

इतना कह पुष्पदत्त अपने जहाज मे चला गया । उसके प
सौभाग्यमजरी ने तिलकमजरी को समझाया—

"बहन ! इस समय युक्ति से काम लेना चाहिये । पुष्प
नीच है । रत्नपुर तक हम इसके अनुकूल रहे । वहाँ जाकर तो
ठीक हो जायगा । क्योकि नगर के लोगो के सामने हम इस
नीचता प्रकट कर देगी ।"

"मै तो इससे अब बात भी नही करना चाहती ।" तिल
मंजरी ने कहा—"तुम जैसा ठीक समझो, स्थिति को सँभाल लो

अगले दिन पुष्पदत्त पुन पुण्यपाल की पत्नियो के पास आ
सौभाग्यमजरी ने उनका स्वागत करते हुए मीठे बोल कहे—

"सेठजी ! आप बहन तिलकमजरी की बात का बुरा
मानना । पति के मरण का शोक जल्दी समाप्त नही हो जात
अन्ततः तो हमे आपका ही सहारा लेना है । लेकिन पति का
भुलाने मे समय तो लगेगा ही । अत आप हमे छह महीने
का समय दीजिये । इतनी अवधि तक हम धर्माराधन कर शा
प्राप्त करेंगी ।"

पुष्पदत्त प्रसन्न हो गया । उसे लगा कि सौभाग्यमजरी सम
दार है । बात भी ठीक है । पुण्यपाल को भुलाने का समय मुझे
ही चाहिये । अब पुष्पदत्त इन दोनो के पास नही जाता था ।
दासियो को ही भेज देता था ।

जहाज चलते रहे । यथासमय इक्कीसो जहाज रत्नपुर
बंदरगाह पर पहुँच गये । पुष्पदत्त के सेवक सेठ श्रीदत्त को सू
दे आये कि आपका पुत्र सात जहाज ले गया था और अब इक्

जहाज लेकर लौटा है। अब तो श्रीदत्त सेठ की खुशी का ठिकाना नही रहा। उसने अपने पुत्र के स्वागत की जोरदार तैयारियाँ की और इष्ट मित्रो सहित पुत्र को लेने सागरतट पर पहुँचा। पुष्पदत्त की माता भी गई थी। पुष्पदत्त माता-पिता के चरणो मे गिर पडा। दोनों ने आशीर्वाद दिया। सभी लोग पुष्पदत्त की प्रशसा करने लगे कि यह तो बडा भाग्यशाली है। पहली बार मे सात के बदले तीन गुने—इक्कीस जहाज लेकर लौटा है। पुष्पदत्त भी अपनी प्रशसा पर फूला नही समा रहा था।

पुष्पदत्त अपनी माँ को एकान्त मे ले गया और बोला—

"माँ! तेरे लिये तो मैं कुछ विशेष लाया हूँ। तू सुनते ही उछल पडेगी और जब देखेगी तो तेरी खुशी का ठिकाना नही रहेगा।"

"तुझे देखकर ही मै बहुत खुश हूँ।" सेठानी ने कहा—"तुमसे अधिक मुझे और प्रियतर क्या होगा?"

"ऐसी बात नही है माँ!" पुष्पदत्त बोला—"तू ही तो कहा करती थी कि पुष्प, मैं तेरे लिये फूलमाला सी बहू लाऊँगी।

"माँ! मैं तेरे लिए एक की जगह दो पुत्र-वधुएँ लाया हूँ। दोनो ही राजकन्याएँ है। एक श्रीपुर के राजा शूरसेन की बेटी सौभाग्यमजरी है और दूसरी का नाम तिलकमजरी है, जो सिहल-द्वीप के राजा सिहलसिह की बहन है।"

"अरे सच!" सेठानी सचमुच ही खुशी से उछल पडी—"तूने पहले क्यो नही बताया? चल, मुझे बहुओ के पास ले चल। मै पूरे नगर को भोज दूँगी।"

पुष्पदत्त माता को लेकर जहाज मे गया तो देखा सौभाग्य-मजरी और तिलकमजरी—दोनो गायब थी। अब तो पुष्पदत्त के

हाथो के तोते उड़ गये। उसका मुंह सूख गया। माँ ने उनकी घबराहट को देखा तो वह भी घबरा गई और पूछा—

"अरे, तू अपनी पत्नियो की भी रक्षा नही कर सका? कहाँ गई वे?"

"धोखा दे गई माँ!" पुष्पदत्त बोला—"असल मे वे अपना देश छोड़ने के कारण बहुत दुःखी थी। तुम चिन्ता मत करो। मैं उन्हे जल्दी ही खोज लाऊँगा।"

पुष्पदत्त असली बात छिपा गया। सेठानी यह जानने के लिये विचारो की उधेड़-बुन मे उलझ गई कि आखिर बहुएं धोखा क्यो दे गईं। इधर सेठ श्रीदत्त के सेवक इक्कीसो जहाजो का माल खाली करने मे जुटे थे। पुष्पदत्त गाजे-बाजे के साथ अपने घर पहुँचा। दूसरे दिन भेंटादि लेकर वह राजा रत्नसेन की सभा मे पहुँचा और अपने व्यापार की सफलता भी बताई। राजा रत्नसेन यह जानकर बहुत प्रसन्न हुआ कि मेरे नगर रत्नपुर मे पुष्पदत्त जैसे भाग्यशाली और पुरुषार्थी वणिक्पुत्र भी है।

सौभाग्यमजरी और तिलकमजरी कहाँ गईं? जिस समय पुष्पदत्त अपने परिवारीजनो तथा इष्ट मित्रो से मिलने मे लगा था उस समय भीड का लाभ उठाकर ये दोनो खिसक गईं। भाग्य सयोग से दोनो उसी उपाश्रय मे पहुँची, जहाँ कनकमजरी मौन-तप कर रही थी। इन दोनो ने भी अभिग्रह किया कि जब तक हमे हमारा पति नही मिलेगा, तब तक मौन नही तोडेगी।

उपाश्रय-सेविका ने अगले दिन राजा रत्नसेन को सूचना दी—

"अन्नदाता! दो सती रानियाँ और आ गई है। वे भी मौन लेकर बैठ गई है।"

"हाय! मेरे राज्य का कल्याण कैसे होगा?" राजा ने मन-ही-मन सोचा, "जहाँ तीन-तीन सतियाँ कष्ट पा रही है।"

राजा रत्नसेन रथारूढ होकर उपाश्रय गया। उसने तीनो से कहा—

"आप अपना कष्ट मुझे बताये। मैं सर्वस्व दांव पर लगाकर भी आपका कष्ट दूर करूँगा।"

कोई नही बोला। निराश होकर राजा रत्नसेन लौट आया। कनकमजरी, सौभाग्यमजरी और तिलकमजरी—तीनो एक ही वृक्ष की लतायें थी। पर न तो कनकमजरी यह जानती थी कि ये दोनो मेरे सौभाग्य की साझीदार है और न ये दोनो ही जानती थी कि यह हमसे बडी हमारी ही बहन है।



9

प्रबल पुण्य क्या नही कर देते ? पुण्य का प्रताप ऐसा होता है कि काला विषधर फूलो की माला बन जाता है। अग्निपुज को शीतल होते भी देर नही लगती। अथाह सागर मे से बच निकलना असभव-सा लगता है, पर धर्म के प्रभाव से असभव भी सभव होता है। ऐसा ही पुण्यपाल के साथ हुआ और वह सुरक्षित बच गया।

जिस समय पुण्यपाल को पुष्पदत्त ने समुद्र मे धकेला था, वह डूब गया। पहली बार उछला तो उसने नवकार मत्र का स्मरण किया। इस स्मरण मे कैसा तीव्र समर्पण रहा होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। परिणाम यह हुआ कि एक बार का उछला हुआ पुण्यपाल पुन: नही डूबा, उसे एक मगर ने अपनी पीठ पर ले लिया था। वह मगर लहरो से टकराता हुआ किनारे की ओर दौडा और पुण्यपाल को किनारे छोड पुन समुद्र मे पैठ गया।

थकावट के कारण पुण्यपाल की देह चूर-चूर हो गई थी। उसके कपडे सूने तो सभी कपडो मे नमक भरा था। समुद्र का खारा पानी सूख गया और नमक रह गया। पुण्यपाल ने नमक झाड़ा और सरोवर की तलाश करने लगा।

समुद्रतटवर्ती वन मे पुण्यपाल को एक बरसाती सरोवर मिल गया। पानी बहुत निर्मल था। उसमे हिरन पानी पी रहे थे। पुण्यपाल एक पेड की जड़ मे बैठ गया, ताकि उसे देखकर हिरन भाग न

गये। जब हिरन पानी पीकर कुलांच भरकर भाग गए तो पुण्य-पाल ने कपडे धोकर सूखने डाल दिये और खुद ने स्नान किया। थोडी ही देर मे कपडे सूख गये। अब वह भविष्य के बारे मे विचार करने लगा—

'रत्नपुर के मार्ग का कुछ ठिकाना नही है। जहां मैं लगा हूँ, इस ओर कही से कोई जहाज आने की सभावना भी नही है। पुष्प-दत्त ने बहुत बडा धोखा दिया। अब किधर जाऊँ?'

पुण्यपाल वन मे ही घूमने लगा। उसे एक वन-पथ मिल गया। उसी पर पड गया पुण्यपाल। महीने भर की लम्बी यात्रा के बाद पुण्यपाल एक नगर मे पहुँचा। नगर के प्रवेश द्वार पर ही मगल-पुर का नामपट्ट लगा था। इससे पुण्यपाल इतना तो समझ गया कि इस नगर का नाम मगलपुर है।

मगलपुर बहुत सुन्दर नगर था। उसकी बसावट बडे करीने की थी। सभी मकान पक्तिबद्ध बने थे। गलियां चांदी और स्फटिक की बनी थी। राजमार्ग चौडे और छायादार वृक्षो वाले थे। बाग-बगीचे, सरोवर, हाट, चौराहे—मगलपुर का सभी कुछ सुन्दर था। लेकिन बडे आश्चर्य की बात यह थी कि यह नगर सूना—सुनसान था। किसी व्यक्ति की बात तो अलग रही, कोई कुत्ता-बिल्ली भी नगर मे दिखाई नही दिया।

पुण्यपाल विचार करने लगा—'कहते है कि हजार साल मे गांव उजड जाता है। हजारो सालो मे नगर भी उजड जाता है। लेकिन उजडे हुए नगर के भवन तो खण्डहर होते है। यहां तो बात ही कुछ और है।'

पुण्यपाल ने पुन सोचा—'यह नगर तो ऐसा लग रहा है कि दो-चार दिन के बीच ही सब कही एक साथ भाग गये है।'

बात भी ऐसी ही थी। वस्त्र, घी, रत्न, ताम्बूल, मिष्ठान्न आभूषण, किराना आदि की दुकानें खुली पड़ी थी। पर न तो कोई दुकानदार था और न कोई खरीदने वाला था। घरो में चूल्हो पर अधजली लकडियाँ पडी थी। बच्चो के पालने लटके थे खाटो पर बिस्तर बिछे थे, मानो रात को कोई सोने आयेगा। लोगो के रहने के सभी लक्षण विद्यमान थे, पर रहने वाला कोई नही था।

पुण्यपाल पूरा नगर घूम-घूमकर देखने लगा। ज्यो-ज्यो वह आगे बढता, उसका आश्चर्य भी बढता जाता। अन्त मे पुण्यपाल राजमहल के सामने पहुँचा और निर्भय होकर सीढ़ियाँ चढता गया तथा पाँचवी मजिल के भवन मे पहुँच एक और आश्चर्य देखा।

राजभवन के पाँचवे खण्ड पर एक परम रूपवती कन्या बैठी थी। कन्या ने पुण्यपाल को देखा और पुण्यपाल ने कन्या को देखा दोनो एक दूसरे को देखने मे खो गये। फिर जैसे कुछ होश आया हो, वह कन्या घबराकर बोली—

"जल्दी भागो। चले जाओ यहाँ से। तुम्हारे प्राणो पर सकट है।"

"प्राणो पर सकट कहाँ नही है? और मृत्यु के मुँह मे से भी लोग बच जाते है।" पुण्यपाल बोला—"सुन्दरी! जो व्यक्ति समुद्र मे से भी जीवित बच जाता है, उसका यह विश्वास और भी दृढ हो जायेगा कि पुण्य यदि रक्षक हो तो मारने वाला कोई नही।

"सुन्दरी! मैं इस नगर की जनशून्यता का रहस्य जाने बिना नही जाऊँगा। यह भी जानना चाहूँगा कि इतने बड़े नगर मे तुम अकेली क्यो रहती हो।"

सुन्दरी कुछ आश्वस्त हो गई। पुण्यपाल को एक आसन दे बोली—

"इस पर बैठो। आपके आने से मानो मेरे प्राण ही आ गए। वह दुष्ट राक्षस एक प्रहर बाद आ जायेगा तब तक मैं आपको अपनी रामकहानी सुना दूं। मैं भी मरूंगी तो आपके साथ ही मरूंगी। अब आप आदि से अन्त सुनें।"

यह कह उक्त सुन्दरी पुण्यपाल को एक कहानी सुनाने लगी।

× × ×

मगलपुर नगर मे शुभमति नामक राजा राज्य करता था। शोभना उसकी रानी का नाम था। रानी शोभना ने एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम कुसुमश्री रखा गया।

राजा शुभपति प्रजावत्सल राजा तो था ही, धर्मनिष्ठ भी था। साधु-सन्तो की वह विशेष सेवा करता था। नगर के बाहर तपस्वियों का एक आश्रम था। वहाँ के आचार्य थे विश्वभूति, जो बहुत ही तपोनिष्ठ सन्त थे। अमरभूति नामक उनका एक शिष्य था। वह भी तपश्चर्यापूर्वक जीवन बिताता था।

तापस अमरभूति महीने भर का कठिन उपवास करता था और महीने भर बाद किसी एक घर से भिक्षा लेकर पारणा करता था। यदि प्रथम घर से भिक्षा नही मिलती थी तो फिर वह दूसरे घर से भिक्षा नही लेता था और पुन एक महीने का व्रत करने का निश्चय करता था। लेकिन कभी उसके जीवन मे ऐसा नही हुआ, जब उसे लगातार दो महीने का व्रत करना पडा हो।

एक बार राजा शुभमति ने तापस अमरभूति से प्रार्थना की कि इस मास के अन्त मे आप मेरे घर से ही भिक्षा लें। तापस ने स्वीकार किया। होनहार की बात कि जब अमरभूति पारणा के लिए भिक्षा लेने राजद्वार गया तो राजा को उसके आने का ध्यान ही नही रहा। तापस भिक्षा लिए [illegible] लौटा और पुन एक महीना [illegible] निश्चय

राजा को अपनी भूल मालूम हो चुकी थी। वह दौड़ा-दौड़ा आश्रम गया और अमरभूति के पैरों में पड़कर अपने अपराध की क्षमा माँगी तथा प्रार्थना की कि इस बार भी मेरे यहाँ ही पधारें।

दूसरी बार भी राजा से अनजाने में चूक हो गई। अब तो तापस के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। वह अभिग्रह करके बैठा कि राजा से बदला लूँगा। उसने जान-बूझकर मुझे भूखा मारा है। उसे यों क्रोध में देख उसके गुरु विश्वभूति ने समझाया—

"वत्स अमरभूति! क्रोध बड़ा घातक शत्रु है। संतों का धर्म क्षमा और उपशम है, क्रोध नहीं। राजा शुभमति के आचरण से तो तुम्हारे कर्मों की निर्जरा ही हो रही है। धर्म-परीक्षा के इस शुभ अवसर को मत छोड़ो। सन्त तो वही है, जो अपने प्राणनाशक के प्रति भी दयालु रहता है।"

अमरभूति पर गुरु के वाक्यों का कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने निदान किया कि 'मेरे अब तक के तप का यही प्रभाव हो कि मैं राजा शुभमति से अपना बदला ले सकूँ।'

ऐसा निदान-निश्चय कर अमरभूति तापस ने प्राण त्यागे और मरकर असुर हुआ। इतना सुनाने के बाद सुन्दरी बाला ने पुण्यसार से कहा—

"मगनपुर के राजा शुभपति की कन्या कुसुमश्री मैं ही हूँ। पूर्वभव के अमरभूति तापस ने इस भव में असुर बनकर मेरे माता-पिता को मार दिया। इस नगर के लोगों को त्रास दिया तो सब-के-सब डरकर भाग गये। तभी से यह नगर सुनसान है।

"हे भद्र! मुझे उसने जीवित छोड़ा है, क्योंकि मेरे साथ वह विवाह करना चाहता है। लेकिन बल का प्रयोग नहीं करता। उसे

सोचा है कि यहाँ अकेले रहते-रहते कभी तो मैं ऊब जाऊँगी और उसके समक्ष समर्पण कर दूँगी।

"लेकिन मैंने भी कुछ सोचा है। मैंने सोचा है कि जब तक वह बल का प्रयोग नहीं करता, तब तक मैं जीवित रहूँगी और जिस दिन वह असुर बल का प्रयोग करेगा, जीभ खींचकर अपना प्राणान्त कर दूँगी।"

"अब तुम चिन्ता मत करो।" पुण्यपाल ने कुसुमश्री से कहा—"पापी कितना ही बलवान हो, वह अपने पाप से ही मरता है। पुण्यवानों को यमराज भी नहीं मार सकता।

"कुसुमश्री! असुर से मैं युद्ध करूँगा। यह युद्ध पाप-पुण्य का युद्ध होगा। यदि उसके पुण्य प्रबल हुए तो वह मुझे मार देगा और यदि मेरे हाथ उसकी मौत होगी तो मैं उसे ठिकाने लगा दूँगा।"

कुसुमश्री आश्वस्त हुई। उसने पुण्यपाल को छिपा दिया। कुछ ही देर बाद असुर आया। आते ही उसने कुसुमश्री से कहा—

"आज कोई मनुष्य यहाँ अवश्य छिपा है। मुझे मानुष-गंध आ रही है।"

"आप नर-भक्षण करके आते हैं, इसलिए आपके रोम-रोम में मानुष-गंध बसी रहती है। यहाँ तो एक मैं ही मानवी हूँ।"

असुर ने फिर ज्यादा छान-बीन नहीं की। चुपचाप सो गया। सवेरे उठा तो पुण्यपाल ने उसका सामना करके कहा—

"तेरे सन्मुख मैं तेरा काल बनकर आया हूँ। अब मरने को तैयार हो जा।"

इतना सुनते ही असुर का मनोबल गिर गया। भीतर-ही-भीतर वह काँप गया। उसने सोचा, यह कोई मुझ से सवाया है।

तभी तो चुनौती दे रहा है। पुण्यवान् के आगे सभी को हार मा
पड़ती है।

इतने मे ही पुण्यपाल ने एक धक्के मे असुर को गिरा दि
और उसकी छाती पर चढकर चोटी पकड ली। असुर गिड़गिड़ा
लगा। कुसुमश्री को ऐसी आशा कदापि नही थी कि असुर इत
जल्दी मात खा जाएगा।

असुर ने खुशामद के स्वर मे कहा—

"मुझे गऊ जानकर छोड दो। मै वचन देता हूँ कि
कहोगे, वही करूँगा।"

पुण्यपाल ने असुर को छोड़ दिया और उसे समझाया—

"पूर्वभव मे तुमने जो तप किया था उसी के कारण
असुर योनि को प्राप्त हुए, क्योंकि असुर भी एक प्रकार के देव
हैं—निकृष्ट देव। यदि तुम उपशम का सहारा लेते तो वैमानि
देव ही बनते।

"हे असुर देव! धर्म-कर्म के अमिट प्रभाव की उपेक्षा म
करो। कुछ ऐसा कर्म करो कि पुन. मनुष्य बन जाओ। क्यों
मनुष्य ही शुभकर्म तथा धर्मपालन कर सकता है। अपनी भावना
मे तुम अब भी धर्म की शरण ले सकते हो। अब तक तुमने जो भी
किया है, उससे अपना अगला जन्म ही बिगाडा है।"

"आपने मुझ मदान्ध की आँखें खोल दी है।" असुर ने
कहा—"अब मेरे लिए क्या आज्ञा है? मैं तो अब सदा आपका
अनुगामी बनकर रहूँगा।"

पुण्यपाल ने आज्ञा दी—

"जो तुमने, बिगाड़ा है, उसे अब तुम्ही बनाओ अर्थात् इस
जनशून्य नगर मंगलपुर को पुन आबाद कर दो।"

असुर ने नागरिकों की ढूंढ-खोज शुरू कर दी। गुफा कन्दराओं में जो छिपकर रहते थे, उन सब को असुर ने नगर में बसा दिया। पन्द्रह दिन में पूरा नगर आबाद हो गया। पुराने सभासद, मंत्री आदि भी आ गये। सबने मिलकर पुण्यपाल को मंगलपुर के राजसिंहासन पर बैठाया। अब पुण्यपाल मंगलपुर का राजा था।

कुसुमश्री ने एक दिन पुण्यपाल से कहा—

"आप मुझे लेकर आचार्य विश्वभूति के पास चलिये। वे ही मेरा दान आपको देंगे। पिता तो नहीं है, पर वे आचार्य मेरे पिता से भी बड़े, पितामह के समान है।"

पुण्यपाल को यह सुझाव अच्छा लगा। वह आचार्य विश्वभूति के पास पहुंचा। आचार्य ने कहा—

"भद्र! जो काम मैं नहीं कर पाया, तुमने कर दिखाया। असुर मुझे सब कुछ बता गया है। वैसे तो कुसुमश्री तुम्हारी ही है, पर तुम मर्यादा रख रहे हो, इसलिए इस बेटी का कन्यादान मैं ही करूंगा।"

पुण्यपाल के साथ कुसुमश्री का विवाह विधि-विधान से हो गया। आचार्य विश्वभूति ने तीन दिव्य चीजें पुण्यपाल को देते हुए कहा—

"राजन्! इन तीनों चीजों को लेकर मेरा भार हल्का करो। मैं इन्हें किसी सुपात्र को ही देना चाहता था। जिसका सुनाम ही पुण्यपाल हो, उससे बड़ा सुपात्र मुझे कौन मिलेगा?

"राजन् पुण्यपाल! पहली चीज यह उड़नखटोला है। यह देवाधिष्ठित और दिव्य है। इस पर जितने जन बैठना चाहेंगे, उतना ही बड़ा इसका विस्तार हो जायगा। यह मन की गति से आकाश में जाता है। जहां जाने की इच्छा करोगे, यह तुम्हें वहीं पहुंचा देगा।"

"दूसरी चीज यह कंथा है। इसे प्रतिदिन झाड़ना। इस नित्य स्वर्णमुद्राएँ निकलेंगी।

"तीसरी चीज यह माला है। इसे धारण करके जैसे रू इच्छा करोगे, वैसा ही रूप तुम्हारा हो जायगा। जब इसे उ लोगे तो पुनः निज रूप को प्राप्त कर लोगे।"

पुण्यपाल ने तीनों चीजें सम्मान के रूप स्वीकार की। प्र चौथी पत्नी कुसुमश्री के साथ वह रथ में बैठकर नगर प्राप उसका जीवन कुसुमश्री के साथ बड़े आनन्द से बीतने लगा। उ शासन में मंगलपुर की प्रजा बहुत सुखी थी।

तीन महीने यों ही बीत गये। एक दिन पुण्यपाल को कन मंजरी की याद सताने लगी। उसने सोचा, "मैंने कनकमंजरी साथ बहुत अन्याय किया है। वह मेरी प्रथम जीवन-संगिनी है। रत्नपुर के साथ सरोवर पर अकेला छोड़कर मैं पुष्पदत्त के साथ लिया था। वह जाने कहाँ भटकती होगी?"

पुण्यपाल ने रत्नपुर जाने का निश्चय कर लिया और कुसु से कहा—

"प्रिये! यह मंगलपुर तुम्हारा पीहर भी है। अत यहाँ अकेले कुछ दिन रह सकती हो। मुझे कुछ दिन को अनुमति दो एक जरूरी काम करके लौट आऊँगा।"

"ऐसा क्या जरूरी काम है, जिसे आप मेरे साथ नहीं सकते?" कुसुमश्री ने कहा—"स्वामी! जब यह नगर जनशून्य यहाँ पक्षी भी पर नहीं मारता था, तब तो यहाँ मैं अकेली रही। अब आपके बिना एक पल भी नहीं रह सकूँगी। आप जहाँ जा मैं भी आपके साथ चलूँगी।"

पुण्यपाल ने कुसुमश्री को साथ ले लिया। दोनों उद्यान

पर बैठे और मन-ही-मन आदेश दिया कि हमे रत्नपुर के पास सरोवर पर पहुँचा दो। मन की गति से उडनखटोला उडा और उसी सरोवर पर उतरा जहाँ पुण्यपाल कनकमजरी को छोड गया था। कुसुमश्री के साथ पुण्यपाल कुछ देर सरोवर पर बैठा और उन क्षण को याद की, जब वह यही कनकमजरी के साथ भी बैठा था। उसने एक रात सरोवर पर ही बिताई। सवेरे उठकर कथा झाडा तो ढेर सारी स्वर्णमुद्राएँ बरस पडी। सबको समेटकर पुण्यपाल रत्नपुर नगर मे पहुँचा। धर्मशाला मे ठहरा और कुसुमश्री को वही छोड पुण्यपाल एक मकान की खोज मे घूमने लगा। ढूंढ-खोज करके उसने एक मकान किराये पर ले लिया। अपना सभी सामान विशेषकर खटोला और कथा उसमे रख दिया और फिर कुसुमश्री को लेने चला। धर्मशाला पहुँचकर पुण्यपाल ने कुसुमश्री से कहा—

"प्रिये! किराये पर एक बहुत अच्छा भवन ठीक कर आया हूँ। कुछ दिन हम उसी भवन मे रहेगे।"

"लेकिन आप इस नगर मे रहना ही क्यो चाहते है?" कुसुमश्री ने पूछा—"मगलपुर से ऐसा मन क्यो उचट गया कि यहाँ किराये के भवन मे रहेगे?"

पुण्यपाल ने अभी तक कनकमजरी का रहस्य नही बताया था, अत. उसने गोल-मोल बात कही—

"प्रिये! इस रत्नपुर नगर से ही मेरे जीवन का नया अध्याय शुरु हुआ था। ये सब बाते मै तुम्हे फिर कभी बताऊँगा। फिलहाल तो यही समझ लो कि इस नगर मे कुछ दिन रहना चाहता हूँ।"

कुसुमश्री उठकर चल दी। दोनो पैदल ही चले। कुछ ही दूर पहुँचे थे कि भयभीत नागरिको की भीड हो-हल्ला करते आ पहुँची। हल्ला मच रहा था—'बचना, भाइयो बचना! राजा का हाथी बिगड

गया है।' एक-दूसरे पर गिरते-पड़ते लोग इधर-उधर भाग रहे थे। भीड़ के इस घेरे मे कुसुमश्री पुण्यपाल से बिछुड़ गई। दोनों एक-दूसरे को खोजने लगे पर कोई किसी को नही पा सका। रत्नपुर बड़ा नगर था। यहाँ आकर पुण्यपाल ने अपनी चौथी पत्नी कुसुमश्री को भी खो दिया। वह अकेला ही अपने किराये के भवन पर लौट गया और सिर पकड़कर बैठ गया।

10

पति की खोज मे कुसुमश्री गलियो मे भटकने लगी। उसके पति ने जो मकान किराये पर लिया था, यदि उसका पता होता तो वही पहुँच जाती। पर अब कहाँ जाए ? घूमती-फिरती, वह वहीं, उसी उपाश्रय मे पहुँची, जहाँ कनकमजरी, सौभाग्यमजरी और तिलकमजरी मौन-तप कर रही थी। उनके साथ कुसुमश्री भी मौन-तप करने बैठ गयी।

उपाश्रय की सेविका ने राजा रत्नसेन को पुन सवाद दिया—

"अन्नदाता ! कोई चौथी धर्माश्रिता नारी भी मौन तप करने आ बैठी है। यदि इन चारो सतियो का मौन नही टूटा तो अनर्थ हो जाएगा।"

सुनते ही राजा चिन्ता मे पड गया। बडी देर के सोच-विचार के बाद राजा को एक युक्ति सूझी। उसने तत्काल घोषणा करवाई—

"मेरे नगर के उपाश्रय मे चार सतियाँ मौन-तप कर रही है। जो भी व्यक्ति इन चारो का मौन भग करेगा, मै उसके साथ अपनी बेटी पुष्पवती का व्याह कर दूंगा।"

यह घोषणा रोज होने का आदेश था। पहले दिन की घोषणा पुण्यपाल ने सुनी तो विचार किया कि सभव है ये चारो मेरी ही पत्नियाँ हो। यह सोच पुण्यपाल ने रूप बदलने वाली माला को

धारण किया और योगी के वेश की कल्पना की तो तत्काल योगीरू हो गया।

पुण्यपाल के गोरे मुखमण्डल पर काली दाढ़ी बड़ी भव्य लग रही थी। गैरिक वस्त्र अग्निपुंज से लगते थे। रुद्राक्ष की माला, कमण्डल, दण्ड तथा त्रिशूल उसके हाथो मे शोभित थे। योगी पुण्यपाल उपाश्रय की ओर चल दिया और वहाँ जाकर अपनी चारो पत्नियो को देखा तो हर्ष से फूला नही समाया। उसने सोचा, अब मैं कल इन चारो का मौन तोड़ूँगा और चमत्कारी ढंग से मिलूँगा। यह सोच पुण्यपाल अपने भवन मे पहुँच गया।

दूसरे दिन राजा का पटह पुन. बजा। योगी वेश मे पुण्यपाल ने पटह का स्पर्श कर लिया। फिर तो नगर भर मे शोर मच गया कि एक योगी ने पटह छुआ है। पटहवादक योगी को सम्मान के साथ राजा के पास ले गये। राजा ने पूछा—

"योगिराज! तुम मौन कैसे तोड़ोगे?"

"आप मेरे साथ उपाश्रय चलिए।" योगी ने कहा—"वही आपको मालूम हो जाएगा।"

अब तो राजा रत्नसेन योगी को लेकर उपाश्रय पहुँचा। साथ मे मन्त्री आदि भी थे तथा नागरिको की भीड भी साथ लग गई थी। चारो नारियाँ मौन बैठी थी। योगीरूप पुण्यपाल ने राजा से कहा—

"राजन्! मेरी इस गैरिक चादर पर इन चारो के मौन का रहस्य अंकित है। जब मै इसे पढूंगा तो चारो ही बोलेंगी।"

"लेकिन इस पर तो कुछ नही लिखा।" राजा रत्नसेन ने आश्चर्य से कहा—"एकदम कोरी-साफ चादर से तुम क्या पढ़ोगे?"

"यही तो योग का चमत्कार है।" पुण्यपाल ने राजा को समझाया—"अदृश्य लिखावट को योगी ही पढ़ सकते हैं।"

सभी लोग योगीरूप पुण्यपाल के प्रभाव मे आ गये। पुण्यपाल ने चादर फैलाई और झूठ-मूठ पढने का अभिनय करते हुए आप-बीती सुनाना शुरू किया। राजा आदि यही समझ रहे थे कि योगी जो कुछ कह रहा है, वह पढकर ही कह रहा है। पुण्यपाल ने कहना शुरू किया—

"वत्स नामक एक देश है। वहाँ की राजधानी है— विराटनगर। वहाँ का राजा है, जितशत्रु। जितशत्रु के मत्री का नाम सुबुद्धि है और मत्री सुबुद्धि की पत्नी का नाम कमलावती है। कमलावती ने एक पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम पुण्यपाल रखा गया। जब पुण्यपाल बहत्तर कलाओ मे दक्ष हो गया तो उसके पिता सुबुद्धि ने उसका विवाह कनकमजरी से कर दिया।

"एक बार राजा जितशत्रु ने अपनी सभा मे यह अहकार प्रदर्शित किया कि मेरे ही कारण लोग सुखी या दु खी है। पुण्यपाल ने इसका विरोध किया और कहा कि आपका दभ मिथ्या है। सभी अपने पुण्यो से सुखी होते है। राजा पुण्यपाल की इस बात से चिढ गया और उसने पुण्यपाल को देश-निकाला दे दिया। पुण्यपाल अपनी पत्नी कनकमजरी को लेकर विराटनगर से चल दिया। कालान्तर मे वह रत्नपुर के निकट एक जलाशय पर रुका। उसने अपनी पत्नी कनकमजरी को जलाशय पर ही छोडा और उससे कहा कि मैं इस नगर मे कुछ व्यवस्था करके आता हूँ। उसके बाद ।"

"उसके बाद क्या हुआ ?" कनकमजरी बोल पडी—"मुझे अकेला छोडकर मेरे प्राणनाथ कहाँ चले गये ?"

कनकमजरी से कुछ न कह पुण्यपाल ने राजा रत्नसेन से कहा—

"देखा राजन्! एक का मौन टूट गया। सबसे पहले इसी ने मौनव्रत लिया था। अब आगे की कहानी मैं कल पढूंगा।"

"शेष तीनों का संकट भी अभी मिटा दो।" राजा ने विन[illegible]
अनुरोध किया—"आप तो करुणावतार हैं। इन पर भी दया करो

"मैं तो अधर में ही रह गई।" कनकमंजरी ने भी दोनों
प्रार्थना की—"मेरा मौन तो टूट गया पर मेरे प्राणेश्वर तो मु
नहीं मिले। मेरा अभिग्रह तो पति-मिलन तक मौन रहने का था।

"तुम्हारी इच्छा शीघ्र पूर्ण होगी।" योगीरूप पुण्यपाल
कहा—"आगे की कथा भी सुनलो।"

योगीरूप पुण्यपाल ने पुनः सादर पढ़ना शुरू किया—

"पुण्यपाल रत्नपुर आया। उसी समय श्रीदत्त के पुत्र पुण्य[illegible]
का पटह बज रहा था। उसे एक सहयात्री की जरूरत थी। भाग्य
परीक्षा के उद्देश्य से पुण्यपाल पुष्पदत्त के साथ हो लिया। पुष्प[illegible]
सात जहाज लेकर समुद्र-यात्रा कर रहा था। सातों जहाज लेकर [illegible]
श्रीपुर नामक नगर में पहुँचा। वहाँ का राजा शूरसेन एक सरो[illegible]
खुदवा रहा था। खुदाई में उसे एक ऐसा ताम्रपत्र मिला, जिसे को[illegible]
नहीं पढ़ सका था। राजा शूरसेन ने घोषणा की कि जो इस ताम्र[illegible]
को पढ़ देगा, मैं उसके साथ अपनी पुत्री सौभाग्यमंजरी का वि[illegible]
कर दूंगा। पुण्यपाल ने वह ताम्रपत्र पढ़ दिया। उसका वि[illegible]
राजकुमारी सौभाग्यमंजरी के साथ हो गया। सौभाग्यमंजरी [illegible]
पिता के पास छोड़ पुण्यपाल पुष्पदत्त के साथ आगे चल दिया।"

अब सौभाग्यमंजरी बोली—

"फिर क्या हुआ महाराज? मैं ही सौभाग्यमंजरी हूँ।"

कनकमंजरी ने सौभाग्यमंजरी की ओर देखा और सौभाग्य[illegible]
मंजरी ने कनकमंजरी को देखा। दोनों यह जानकर बड़ी प्रसन्न हु[illegible]
कि हम एक ही प्रिय की प्रियाएँ हैं। योगी पुनः आगे पढ़ने लगा—

"पुण्यपाल सिंहलपुर पहुँचा। वहाँ उसने सिंहलद्वीप के [illegible]

सिंहलसिंह के रत्नों की परीक्षा करके राजा की चिन्ता को मिटाया। राजा ने अपनी बहन तिलकमंजरी का विवाह पुण्यपाल के साथ कर दिया।

"आगे की कथा मैं संक्षेप करके पढता हूँ। दोनों पत्नियों के पीहर से पुण्यपाल को चौदह जहाज मिले थे। अपने चौदह जहाज और दोनों पत्नियों को लेकर पुण्यपाल पुष्पदत्त के साथ चला। पुष्पदत्त ने पुण्यपाल को सागर में धकेल दिया ।"

"यह सब कहानी मेरे पति की ही है।" तिलकमंजरी बोली—"मेरा मन कहता है कि मेरे पति सागर में से बच गये होंगे। अब वे कहाँ हैं? हे योगी! आप तो त्रिकालज्ञ हैं। आप सब जानते होंगे।"

योगीरूप पुण्यपाल आगे कहने लगा—

"पुण्यबल से पुण्यपाल बच गया। उसे एक मगर ने किनारे लगा दिया। वहाँ से चलकर पुण्यपाल मंगलपुर नामक एक जनशून्य नगर में पहुँचा। उस नगर में मात्र एक कन्या रहती थी। वह थी राजकन्या कुसुमश्री। वह नगर एक असुर ने उजाड़ दिया था। पुण्यपाल ने असुर को वश में करके मंगलपुर को पुनः आबाद किया और वहाँ का राजा बन गया। उसने कुसुमश्री से विवाह भी कर लिया। रानी कुसुमश्री के साथ रहकर पुण्यपाल मंगलपुर की प्रजा का पालन करने लगा।"

"एक दिन पुण्यपाल को अपनी प्रथम पत्नी तिलकमंजरी की बहुत याद आई। वह कुसुमश्री को लेकर यहाँ रत्नपुर में आया। यहाँ हाथी से बचने के चक्कर में कुसुमश्री और पुण्यपाल आपस में बिछुड़ गये।"

"मैं ही कुसुमश्री हूँ।" कुसुमश्री बोली—"हे त्रि

अब तो आप हमारे पति को बता दो। हम चारों का सौभाग्य ए
ही है।"

"तुम्हारा पति इसी नगर में किराये का मकान लेकर
रहता है। कालान्तर में वह स्वयं ही तुम चारों से मिलेगा।"

"पुत्रियो! अब तुम मेरे साथ चलो।" राजा रत्नसेन
चारों नारियों से कहा—"अब तक मेरे एक पुत्री पुष्पवती थी
आज से मैं पाँच पुत्रियों का पिता हुआ।"

इतना कह राजा ने योगी से कहा—

"योगीराज! मेरी पुत्री का क्या होगा? मेरी घोषणा तो य
थी कि जो पुरुष इन चारों का मौन तोड़ेगा, उसी के साथ मैं अप
पुत्री का विवाह करूँगा। लेकिन आप तो गृहत्यागी योगी हैं।"

"तुम्हारी चिन्ता भी दूर होगी।" योगी ने कहा—"इन चा
का पति पुण्यपाल ही तुम्हारा जामाता होगा।"

राजा आशा से भर गया। कनक, सौभाग्य, तिलक औ
कुसुम—चारों को उसने रथ में बैठाया और अपने भवन को
गया। चारों राजा के घर में बड़े सुख से रहकर पति की प्रती
करने लगीं। चारों आपस में बातें करतीं और अपनी-अपनी कहा
नाने छोटी कुसुमश्री बोली—

"हाय, पुरुष कैसे छलिया होते हैं! मुझे भी कभी नहीं बता
कि मेरी तीन बड़ी बहनें और भी हैं।"

"सबसे बड़ा मजाक तो यह रहा कि हम चारों एक न
रहीं और एक दूसरी को नहीं जान पाईं।" तिलकमंजरी बोली—
"अब आवें तो उनसे खूब लड़ूंगी।"

"तुम सबकी ओर से मैं लड़ूंगी।" अनब्याही पत्नी
कुमारी पुष्पवती ने कहा—"पूछूंगी कि आपने मेरी बहनों को दु
क्यों दिया?"

"दु ख तो दुष्ट पुष्पदत्त ने दिया है।" तिलकमजरी बोली—"एक दिन उसको भी दण्ड दिलाना है।"

"कोई किसी को दु ख या सुख नही देता।" कनकमजरी बोली—"सब अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही सुख-दु ख पाते है।"

इसी तरह पाँचो घुल-मिलकर रहती थी। राजा रत्नसेन अपने गुप्तचरो और अन्वेषको से पुण्यपाल की खोज कराने मे लगा था। पर उसे सफलता नही मिली थी, क्योकि पुण्यपाल तरह-तरह के वेश बदलकर नगर मे रहता था। उसके पास रूप बदलने वाली माला थी। पत्नियो की ओर से उसे किसी तरह की चिन्ता नही थी। क्योकि सब सुख-सुविधा के साथ राजमहल मे रहती थी। पुण्यपाल अब किसी नाटकीय ढग से पुष्पदत्त की धूर्तता का पाठ उसे पढाना चाहता था और इसी की योजना वह मन-ही-मन बनाया करता था। □

11

रत्नपुर में धनदत्त नाम का एक श्रेष्ठी रहता था। धनश्री उसकी पत्नी थी। श्रेष्ठी धनदत्त और सेठानी धनश्री—दोनों ही धर्मनिष्ठ, साधुसेवक और उत्तम कोटि के श्रावक थे। नगर के श्रेष्ठि-जन धनदत्त के साधु-स्वभाव और धार्मिकता को सराहते थे। धनदत्त दानशूरों में अग्रणी था और नगर के धनी सेठों में भी अग्रणी था।

धनदत्त का व्यापार कई प्रकार का था। उसके पास पर्याप्त खेती थी। सैकड़ों-हजारों खेतिहर मजदूर उसके खेतों में काम करते थे। हजारों मन अन्न, गन्ना, और कपास उसके खेतों में होती थी। धनदत्त की आय का दूसरा साधन उसके पशु थे। उसके पास [illegible] ऊँट भेड़-बकरियाँ थीं। वह उनकी ऊन का व्यापार भी करता था। तीसरा काम वह लेन-देन का करता था। वह व्यापारियों को उचित ब्याज पर ऋण भी देता था।

धनदत्त श्रेष्ठी के चार पुत्र थे। बड़ा राम था। दूसरा श्याम था। तीसरे और चौथे के नाम क्रमश: देवदत्त और मणिदत्त थे। चारों भाइयों में बहुत प्रेम था। चारों का विवाह भी हो चुका था। लेकिन चारों माता-पिता के साथ सम्मिलित परिवार के रूप में रहते थे।

कालान्तर में सेठानी धनश्री का निधन हो गया। धनदत्त विधुर हो गया। पत्नी के बिना उसे यह संसार सूना-सूना [illegible]

था। व्यापार का सब काम उसने तीनों बड़े पुत्रों पर छोड़ दिया। चौथा मणिदत्त अभी व्यापार-कुशल नहीं था। सबसे फुरसत पा सेठ धनदत्त का अधिकांश समय धर्म-आराधना में बीतता था।

सेठ धनदत्त ने अपने पुत्रों के भविष्य पर विचार किया और चारों के लिये उसने चार भवन बनवाये। चारों एक ही नक्शे के बने थे। किसी में एक खिड़की का भी अन्तर नहीं था। चारों मकान पूरे होने के डेढ़ महीने बाद ही धनदत्त ने खाट पकड़ ली, यानी बीमार हो गया। एक दिन उसकी तबियत ज्यादा घबराई तो उसने अपने चारों पुत्रों को बुलाकर कहा—

"पुत्रो ! तुम्हारी माता तो छह मास पहले ही चली गई। मुझे भी उसके पास जाना है। तुम लोग चिन्ता मत करना, क्योंकि माँ-बाप सदा किसी के जीवित नहीं रहते।

"पुत्रो ! जैसा प्रेम तुम चारों भाइयों में है, उस पर मैं गर्व करता हूँ। लेकिन यह प्रेम प्रायः स्त्रियों के द्वारा खण्डित हो जाता है। जैसा प्रेम तुम भाइयों में है, वैसा ही तुम्हारी पत्नियों में भी रहे, यह जरूरी नहीं। अतः तुम मेरी बात ध्यान से सुनो।

"मेरे मरने के बाद जब तक प्रेम से निभे, चारों शामिल रहना। जब देवरानी-जिठानियों में मनमुटाव होने लगे तो चारों अलग हो जाना। तुम चारों के लिये मैंने एक-एक भवन बनवा दिया है। तुम्हारा रहन-सहन बँटेगा, पर दिल तो नहीं बटेंगे।

"पुत्रो ! मैंने अपने समस्त धन को भी चार बराबर भागों में बाँट दिया है। जब तुम अलग होना चाहो तो मेरी खाट के नीचे के स्थान को खोदना। उसमें चार कलश निकलेंगे। हर कलश पर अलग-अलग नाम खुदा होगा। अपने-अपने नाम वाला ही कलश ले लेना।"

इतना कह धनदत्त मौन हो गया। थोड़ी देर बाद उसने आँखें

उठो। रक्त की वमन हुई और वमन के साथ ही धनदत्त के प्राण पखेरू उड़ गये। चारों भाई रोने लगे। चारों की पत्नियाँ भी हाय-हाय करने लगीं। पड़ोसी भी आ गये। सबने मिलकर धनदत्त का अन्तिम संस्कार किया। चारों ने अपने पिता का मृत्यु-भोज भी किया।

दो-तीन महीने तो चारों शामिल रहे। फिर चारों को अलग रहने की इच्छा हुई। बड़े राम ने सबसे कहा—

"भाइयो! मकान तो चाहे जब ले लेंगे। सबसे पहले अपने-अपने नाम के कलश ले लें।"

सब राजी हो गये। निर्देशित जगह खोदी गई। चारों कलश अपना-अपना नाम पढ़कर हरेक ने ले लिये। सबसे पहले राम ने अपना कलश खोला। कलश में भूसा और मिट्टी भरी थी। राम ने तो अपना माथा पीट लिया—

"हाय, यह कैसा मजाक किया पिताजी ने? मुझे भूसा-मिट्टी दिया है। श्याम! तू अपना कलश खोलकर देख, तेरे कलश में क्या है?

श्याम ने अपना कलश खोला तो वह भी बौखला गया। उसके कलश में तो और भी बुरी चीज थी। पशुओं के टूटे सींग और पूँछ के बाल भरे थे। अब तो झटपट देवदत्त ने भी अपना कलश खोला तो उसमें भी बेकार की चीजें थीं। कुछ भूर्जपत्र के टुकड़े थे और कुछ रेशम के टुकड़े भरे थे। तीनों एक समान निराश और दुःखी थे। अब सबकी दृष्टि सबसे छोटे मणिदत्त के कलश पर थी। मणिदत्त ने अपना कलश खोला तो सबकी आँखें चौंधिया गईं। उसमें स्वर्णमुद्राएँ और रत्न भरे थे। राम बोला—

"पिता ने जो पक्षपात किया है उसे हम ठीक करेंगे। सोने में हम अपना हिस्सा लेंगे।"

"मैं तो एक कौड़ी भी नही दूंगा।" मणिदत्त बोला—"यह तो अपना-अपना भाग्य है। मैंने अपने नाम का कलश लिया है, तुममें से तो किसी का नही लिया ?"

"इसमें नाम की क्या बात है ?" श्याम बोला—"हम चारो एक पिता की सन्तान हैं। पिता की सम्पत्ति पर चारो का समान अधिकार है। अत: इस धन का बंटवारा तुम्हे करना ही होगा।"

"मैं प्राण दे दूंगा, पर अपने कलश की एक भी मुहर नही दूंगा।" मणिदत्त बोला—"अगर मेरे कलश मे कूडा-कचरा निकलता और तुम्हारे मे मुहरें निकलती तो क्या तुम मुझे दे देते ?"

देवदत्त अब तक चुप था। वह बोला—

"भाइयो ! हम आपस मे क्यो लडें ? पिता ने मरते-मरते जो झगड़ा खडा किया है, उसका निपटारा राजा रत्नसेन के न्यायाधिकरण मे ही होगा।

सभी को देवदत्त का यह प्रस्ताव पसन्द आया। चारो भाई राजा रत्नसेन की राजसभा मे पहुंचे और अपनी समस्या राजा के सामने रखी। राजा ने मन्त्री की ओर देखा और कहा—

"न्याय के दृष्टिकोण से तो मणिदत्त के धन का समान बंटवारा करके चारो मे बांट देना चाहिये।"

"यह तो अन्याय होगा।" मन्त्री ने कहा—"स्वर्गीय सेठ धनदत्त का बंटवारा पहले सभी ने स्वीकार कर लिया था। सब के कलशो पर अलग-अलग नाम भी सेठ द्वारा अंकित मिला है। पिता जिसको जो चाहे दे, चाहे न दे। इस व्यवस्था मे कोई पुत्र ऐतराज नही कर सकता।"

"पैतृक सम्पत्ति का बटवारा तो न्यायदृष्टि से बराबर होता है। इसमे पिता को पक्षपात करने का अधिकार नही है।"

मन्त्री बोला—

"राजन् ! आपका दृष्टिकोण सर्वथा उचित है। मेरे स्वर्गीय सेठ ने तो अपने निजी पुरुषार्थ से इतना बड़ा व्यापार खड़ा किया था। अतः उसे यह अधिकार था कि किसी बेटे को कम दे और किसी को अधिक दे। किसी को कुछ न दे, यह अधिकार भी उसे था। अत. राम, श्याम और देवदत्त को मणिदत्त के धन में ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए।"

राजा ने तीनों बड़े पुत्रों की ओर देखा तो राम बोला—

"न्यायरक्षक ! हमारे पिता यदि यह कहते कि मैं अपने तीन बड़े पुत्रों को कुछ नहीं दे रहा हूँ और छोटे मणिदत्त को सब कुछ दे रहा हूँ तो हमें कोई ऐतराज नहीं था। हमारे पिता ने मरते समय कहा था कि मैंने अपने समस्त धन का बराबर बँटवारा चार भागों में कर दिया है। चारों के चारों मकान बिल्कुल एक-से हैं। सम्पत्ति भी चारों को बराबर रख दी है। लेकिन जब हमने अपने कलश खोले तो धूल, पशुओं के सींग और भूर्जपत्र के टुकड़े मिले। धन तो छोटे को मिला है।"

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।" मन्त्री बोला—"सेठ धनदत्त अपनी धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध थे। वे विवेकी भी थे। मैं तो यह अन्याय और अधार्मिकता देखकर तो आश्चर्य होता है।"

सब कुछ सुनने के बाद राजा रत्नसेन ने निर्णय दिया—

"श्रेष्ठि-पुत्रो ! तुम्हारे पिता ने इस मूर्खतापूर्ण बँटवारे [illegible] आदर नहीं करते। पक्षपात भी वे नहीं कर सकते थे। लेकिन देखने में तो ऐसा ही लग रहा है कि उन्होंने मूर्खतापूर्ण पक्षपात किया है।

"श्रेष्ठि-पुत्रो ! तुम तीनों भाइयों का वाद [illegible] [illegible] और उलझनपूर्ण है। इस वाद में तुम तीन भाई [illegible]

वादी हो। तुम्हारे स्वर्गीय पिता और छोटा भाई मणिदत्त प्रतिवादी है।

"श्रेष्ठि-पुत्रो! स्वर्गीय सेठ धनदत्त के प्रतिवाद को हम लोग अपनी बुद्धि से समझने का प्रयत्न करेंगे। अत तुम्हारा वाद हम अपने न्यायाधिकरण मे विचाराधीन रखते हैं। आठ दिन बाद तुम अपना न्याय-निर्णय जानने आ जाना।"

इसके बाद सभा विसर्जित हो गई।

× × ×

राजा रत्नसेन ने पुण्यपाल की बहुत खोज कराई पर वह कही नही मिला। उससे योगी ने यह कहा था कि पुण्यपाल रत्नपुर मे ही है, इसलिए राजा के गुप्तचर उसे नगर मे ढूंढा करते थे। लेकिन पुण्यपाल वेश-परिवर्तन करने के कारण राजा के गुप्तचरों को नही मिला।

कुछ दिनों से पुण्यपाल ने योगी का वेश भी त्याग दिया था।

राजा ने अपनी सभा मे कहा—

"मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने वाला योगी भी जाने कहा चला गया? वह भी कई दिन से दिखाई नही देता है।"

"बहते पानी और रमते जोगी का कोई ठिकाना नही होता।" यह बात एक युवा श्रेष्ठी ने कही—"महाराज! आप तो योगी के वचनों पर विश्वास करना चाहिए।"

"तुम कौन हो?" राजा ने युवा श्रेष्ठी से कहा—"कही तुम्ही तो पुण्यपाल नही हो।"

"मेरा नाम धनराज है।" युवा श्रेष्ठी ने कहा—"मैं एक सार्थवाह हूँ। अपने सार्थ से बिछुड जाने के कारण आपके नगर मे ठहरा हूँ। सम्भव है मुझे ढूंढते मेरा सार्थ इसी नगर मे आ जाए।"

धनराज नाम का युवा श्रेष्ठी पुण्यपाल ही था। उसने एक

व्यापारी का वेश बना लिया था और अब वह इसी रूप में राजा रत्नसेन की सभा में आया करता था। अतिथि-व्यापारियों की आसन-पंक्ति में वह बैठा करता था। उसे आते-जाते चार-पाँच दिन हो गये थे।

एक दिन राम, श्याम, देवदत्त और मणिदत्त का [illegible] आया। राजा ने बड़े निराश-स्वर में कहा—

"मेरी सभा में आज तक कोई निराश नहीं लौटा। [illegible] श्रेष्ठिपुत्रों का न्याय मैं नहीं कर सकता। अतः मुझे तो यही [illegible] लगता है कि जितना धन छोटे श्रेष्ठिपुत्र मणिदत्त को मिला है उतना ही मैं शेष तीनों पुत्रों को अपने खजाने से दे दूँ।"

"आखिर समस्या क्या है?" युवा श्रेष्ठी धनराज [illegible] पाल ने कहा—"निपटारा हर समस्या का हो सकता है।"

राजा ने सम्पूर्ण वाद धनराज को समझा दिया। धनदत्त सेठ के कारोबार का ब्योरा देते हुए राजा ने धनराज से यह भी कहा [illegible] सेठ धनदत्त बहुत ही बुद्धिमान और धर्मात्मा था। मरते-मरते [illegible] एक विचित्र विवाद पैदा कर गया है।

धनराज ने सब बातों पर विचार करके राजा से कहा—

"यह तो कोई समस्या नहीं है। आप आज्ञा दें तो श्रेष्ठिपुत्रों का न्याय मैं कर सकता हूँ।"

"तुम न्याय कर सकते हो?" महामात्य ने चौंकते हुए कहा—"फिर तो हमारे न्यायाधिकरण की लाज बच जाएगी। हमारी समझ में तो कुछ नहीं आता।"

"समझ के कारण ही तो तिल का ताड़ बन जाता है" धनराज ने कहा—"मैं एक-एक करके चारों श्रेष्ठि-पुत्रों [illegible] सामने बात करना चाहता हूँ।"

धनराज ने सबसे बड़े श्रेष्ठिपुत्र राम को बुलाया। पूछा—

"नाम ?"

"राम !"

"अपने पिता के सामने तुम उन्हें व्यापार में क्या सहयोग देते थे ?" धनराज ने कहा—"जो कुछ बताना, सच-सच बताना।"

राम बोला—

"पिता का कृषि-व्यापार मैं ही सम्भालता था। जितनी उपज होती थी, सब का क्रय-विक्रय मैं ही करता था। मुझ से छोटा भाई श्याम पशु-व्यापार को देखता था। व्यापार का सारा काम तो हम तीनों बड़े भाई ही सम्भालते थे। छोटा मणिदत्त तो कुछ भी नहीं करता था। फिर भी पिताजी उसे करोड़ों का नकद धन दे गये।"

"फिर तो तुम यह भी जानते होगे कि खेतों की उपज से कितनी आमदनी होती थी ?" धनराज ने राम से पूछा—"कृषि-व्यापार की पूरी जानकारी तो तुम्हें होगी ही।"

"खेतों से करोड़ की आमदनी होती थी।" राम बोला—"किसी वर्ष वर्षा न हो, तब कुछ घाटा पड़ता था।"

"फिर तो तुम मूर्खों के भी मूर्ख हो।" धनराज ने कहा—"तुम्हारे पिता तो बहुत बुद्धिमान थे। तुम मूर्ख नहीं समझे तो इसमें पिता का क्या दोष ? मूर्ख ही हीरा को काच समझता है।

"हे मूर्खराज ! तुम्हारे कलश में भूसा-मिट्टी निकला, इसका अर्थ यह है कि तुम्हारे पिता कृषि-व्यापार तुम्हें सौंप गये हैं।

"तुम्हारा दूसरा भाई भी मूर्ख है। उसके कलश में पशुओं के टूटे सींग और पूंछ के बाल निकले हैं। इसका अर्थ है कि पशुधन तुम्हारे छोटे भाई श्याम को सौंपा गया है। दूध की बिक्री और ऊन के निर्यात से भी करोड़ों की आमदनी होगी।"

राम-श्याम की तो बांछें खिल गईं। अब धनराज ने [illegible] तीसरे श्रेष्ठिपुत्र को बुलाकर पूछा—

"तुम्हारे कलश में क्या निकला ?"

"भूर्जपत्र और रेशम के टुकड़े।" देवदत्त ने स्वत. [illegible] "पिताजी के समय में मैं ऋण-वसूली का कार्य सम्भालता था। [illegible] मुनीम मेरे अधीन कार्य करते थे।"

"अब तो तुम भी समझ गये होगे।" धनराज ने [illegible] "बही-खाते रेशम पर लिखे जाते हैं। कच्चा हिसाब भूर्ज[illegible] लिखा जाता है। अत तुम्हारे पिता ने तुम्हारी योग्यता के अ[illegible] तुम्हें ऋण-वसूली का कारोबार दिया है।

"श्रेष्ठिपुत्रो! मणिदत्त तुम सबसे छोटा है। वह अभी [illegible] में नासमझ है। इसलिए तुम्हारे पिता ने उसे नकद धन मणि-[illegible] रत्न और स्वर्णमुद्राएं दी हैं।

"तुम्हारे पिता ने सुन्दर बंटवारा तो किया ही, तुम्हारी [illegible] की परीक्षा भी ली थी।"

"बुद्धि परीक्षा तो हमारी भी हो गई।" राजा [illegible] कहा—"तुमने तो कमाल ही कर दिया। इतनी दूर की [illegible] नहीं समझ पाया। सचमुच, तुमने हमारे न्यायाधिकरण की [illegible] की है।

"हे [illegible]! हम तुम्हें उचित वर देना चाहते हैं। [illegible] मांग लो। यदि तुम कुछ नहीं मांगोगे तो हमें दुःख होगा।"

"यदि आप [illegible] देने [illegible] तो मैं मांग लूंगा।" [illegible] [illegible]—"[illegible] [illegible] [illegible] हो जाऊंगा।"

"[illegible] [illegible] के लिए प्राण भी दे देते हैं।" राजा [illegible]

कहा—"तुम मांग कर तो देखो। जो तुम मांगोगे, हम वही देंगे।"

धनराज ने माँगा—

"तो फिर मुझे अपना कराधिकारी बना दीजिए। मैं आपके यहाँ के तथा बाहर से आये व्यापारियो से कर वसूल किया करूंगा। कर मैं अपनी इच्छा से वसूल करूं, यह अधिकार मुझे दीजिए।"

राजा ने अधिकार दे दिया और अपने नगर मे पटह बजवा दिया कि आज से श्रेष्ठी धनराज व्यापारियो से कर वसूल किया करेंगे। इनकी आज्ञा का उल्लघन कोई नही कर सकता।

धनराज को एक कार्यालय मिल गया और सहयोग के लिए कुछ कर्मचारी भी मिल गये।



12

धनराज ने व्यापारियों की नामावली ली और उनसे कर वसूल करना शुरू किया। वह सबसे आधा कर लेता था। इससे सभी व्यापारी खुश थे और धनराज की जय-जयकार करके कहते थे कि नगराधिकारी तो बहुत ही उदार और धर्मात्मा है।

धनराज सबसे कहता था कि व्यापारियों से उचित दर से कर लिया जायगा तो वे कर की चोरी नहीं करेंगे। फिर तो [illegible] कर देंगे। राज्य का कोष व्यापारियों से ही भरता है। अतः राज्य का कर्तव्य है कि व्यापारियों को सहयोग दे।

एक दिन धनराज श्रेष्ठी श्रीदत्त के यहाँ गया और उस पर दुगुना कर लगा दिया। इस पर श्रीदत्त का पुत्र पुण्यदत्त बिगड़ गया और बोला—

"यह पक्षपात तुम क्यों करते हो? सबसे आधा कर लिया और हमसे सब कुछ हड़पना चाहते हो।"

"भाइयो ! जिसे तुम उदार कराधिकारी कहते हो, वह मूर्ख है। ऐसे मूर्ख का क्या भरोसा, जिसका कोई सिद्धान्त न हो। आज सने मुझे चोर-तस्कर कहा है, कल को तुमसे भी कह सकता है। दह जहाजो का माल कर के रूप मे लेना चाहता है। बोलो, तुम या कहते हो ?"

एक व्यापारी बोला—

"भाइयो ! श्रेष्ठी श्रीदत्त हमारे नगर के प्रतिष्ठित श्रेष्ठियो हैं। नये कराधिकारी धनराज ने इनको चोर कहा है, यह सहन ही होगा। अतः हम राजा से दो शिकायतें करने इकट्ठे होकर लें। पहली शिकायत यह कि श्रीदत्त पर कर इतना अधिक क्यो गाया गया ? दूसरी यह कि इन्हे चोर क्यो कहा ? श्रीदत्त और प्रदत्त को चोर कहना समस्त व्यापारियो के गाल पर एक माचा है।"

सभी व्यापारी इकट्ठे होकर राजसभा पहुँचे। धनराज वहाँ हले से ही था। सभी ने धनराज की ओर इगित करते हुए कहा—

"अन्नदाता ! जैसा अन्याय और सम-विषम व्यवहार आपके ये कराधिकारी धनराज ने किया है, उससे क्षुब्ध होकर हम सब यापारी आपका राज्य ही छोड देंगे। अतः आप इसे दण्डित कीजिए।"

राजा ने धनराज से कहा—

"यह तुमने क्या किया ? मैंने तो तुम्हे बहुत चतुर समझा था। कर मे बांधकर तुम मेरे राज्य को क्यो चौपट करना चाहते हो ?"

धनराज बोला—

"यही दिन देखने-दिखाने के लिए मैंने आपसे यह अधिकार लिया था।

"पृथ्वीनाथ ! श्रेष्ठी श्रीदत्त जैसे है, वैसे हैं। पर इनका पुत्र

पुष्पदत्त तो चोरों का चोर है। इसने पुण्यपाल को समुद्र मे धकेलकर उसके चौदह जहाज हथिया लिये है। इसके पास तो सात ही जहाज है।"

"यह झूठ बोलता है।" पुष्पदत्त ने कहा—"कौन पुण्यपाल? मै किसी पुण्यपाल को नही जानता।"

धनराज ने अपने कठ की रूप-परिवर्तिनी माला उतारी और तुरन्त अपने असली रूप—पुण्यपाल के रूप मे आ गया। पुण्यपाल को देख पुष्पदत्त थर-थर कापने लगा। अब पुण्यपाल बोला—

"मै ही पुण्यपाल हूं। पुष्पदत्त ! क्या तुम मुझे नही पहचानते? अब सब बातें अपने मुंह से कह दो। सच बोलने पर तुम बच सकते हो। मैंने तुम्हे सिहलपुर मे भी प्राणदण्ड से बचाया था। वरना मै सिहलपुर के राजा को यही ले आऊंगा।"

अब तो पुष्पदत्त ने सब कुछ स्वीकार कर लिया। सभी व्यापारी उसे धिक्कार देने लगे। श्रेष्ठी श्रीदत्त ने भी उसे धिक्कारा—

"रे नीच ! तू मेरा पुत्र होने लायक कदापि नही है। विश्वासघात तूने किया, कृतघ्नता का पाप तूने किया और परनारियों का हरण करने का तूने जाल रचा। आज से तेरा-मेरा कोई सम्बन्ध नही है।"

राजा रत्नसेन भी कुपित हुआ। उसने तुरन्त निर्णय दिया—

"इस नीच को प्राणदण्ड दिया जाय।"

वधिको ने उसे बन्दी बना लिया। पर परोपकारी पुण्यपाल ने उसे मुक्त करा दिया। अब राजा ने पुण्यपाल को अपने पास सिंहासन पर बैठाकर पूछा—

"जामाता ! योगी ने तो कहा था तुम इसी नगर मे हो लेकिन कहा छिपे थे? मैंने तो तुम्हारी बहुत खोज कराई थी।"

"मैं ही योगी था।" पुण्यपाल ने कहा—"मैं ही धनराज सेठी बना था। अपना परिचय देने के लिए कुछ नाटक तो करना ही था। अब पुण्यपाल के रूप मे आपके सामने हूँ।"

राजा ने तुरन्त विवाह का मुहूर्त निकलवाया। यथादिन और यथासमय राजा रत्नसेन ने अपनी पुत्री पुष्पवती का विवाह पुण्यपाल के साथ कर दिया। पुण्यपाल अब पाँच पत्नियो का पति था। कनकमंजरी, सौभाग्यमजरी, तिलकमजरी, कुसुमश्री और पुष्पवती। पाँचो मे बड़ा प्रेम और अपनत्व था। पुण्यपाल पाँचो के साथ सुखमय जीवन बिताता था।

एक दिन रत्नपुर मे कोई मुनि आये। राजा-प्रजा सभी मुनि की देशना सुनने गये। राजा रत्नसेन प्रतिबोधित हो गया। उसने दीक्षा लेने का निश्चय कर डाला और सबसे पहला काम यह किया कि पुण्यपाल का राज्याभिषेक किया, फिर दीक्षा लेकर चारित्र ग्रहण कर लिया।

अब पुण्यपाल रत्नपुर का राजा था। उसने नये सिर से राज्य की व्यवस्था की। कई दानशालाएँ खुलवा दी। पूरे राज्य मे आखेट-निषेध की घोषणा करवा दी। पुण्यपाल के पास उडनखटोला था। वह मन की गति से गन्तव्य स्थान पर पहुँचा देता था। उसमे बैठकर पुण्यपाल पहले सागर पार श्रीपुर गया। वहाँ श्वसुर राजा शूरसेन को चारित्र ग्रहण करने का सुअवसर दिया और राज्य संभाला। सिंहलपुर के राजा सिंहलसिंह का भी कोई उत्तराधिकारी नही था। अत उन्होने भी चारित्र ग्रहण कर अपने बहनोई पुण्यपाल को राजा बनाया।

पुण्यपाल उडनखटोले के जरिये मगलपुर, जो कुसुमश्री का पीहर भी था, श्रीपुर, जो सौभाग्यमजरी का पीहर था तथा सिंहलपुर जो तिलकमजरी का पीहर था—इन तीनो राज्यो मे जाता था और प्रत्येक राज्य की राजसभा मे क्रम-क्रम से बैठता था। अन्त मे वह

रत्नपुर लौट आता था। यह नगर पुष्पवती का पीहर था। इस तरह पुण्यपाल रत्नपुर, श्रीपुर, मगलपुर और सिंहलपुर चार राज्यों का महिमावान राजा था और चारो देशों की प्रजा का पालन न्याय-नीति से करता था। रत्नपुर मे उसका विशाल सैन्य सगठन था।

पांचो पत्नियो के साथ दाम्पत्य-सुख और चारो राज्यो का शासन-सुख भोगते हुए महाराजाधिराज पुण्यपाल को कुछ काल बीता तो उसे अपने माता-पिता की याद आने लगी। उसने एक दिन सोचा कि कोई पुत्र कितना ही महिमावान हो, यदि वह अपने माता-पिता की सेवा नही करता तो उसका जीवन व्यर्थ ही है। अपने मन की बात उसने पटरानी कनकमजरी से कही तो कनकमजरी बोली—

"स्वामी! विराटनगर का अन्यायी राजा मेरे सास-श्वसुर को भी दु:ख देता होगा। अत. आपको एक दूसरे कारण से भी विराट-नगर जाना चाहिए।"

"प्रिये! मैं उडनखटोले पर बैठकर विराटनगर जाऊँ और अपने माता-पिता को यहाँ रत्नपुर मे ले आऊँ।" पुण्यपाल ने कहा—"विराटनगर जाने का यही एक कारण मेरी समझ मे आता है। वहा जाने का दूसरा कारण क्या है, सो तुम बताओ।"

"स्वामी! आप बहुत भोले है।" कनकमंजरी ने कहा—"विराटनगर के राजा जितशत्रु ने ऐसी निर्दयता से आपको देश-निकाला दिया, इसे मैं कभी नही भूलूंगी।"

"बुराई तो बुरे स्वप्न की तरह भूल जाना चाहिए।" पुण्यपाल ने कहा—"फिर राजा जितशत्रु की बुराई भी मेरे लिए भलाई हो गयी, इसमे मैं उसका उपकार मानता हूं। तुम्ही सोचो, यदि वह मुझे देश-निकाला न देता तो मैं जीवन भर [illegible] बना रहता। चार राज्यो का राजा नही बन पाता। राजा [illegible] निकाला भी मेरे [illegible]

"बात तो आपकी बिल्कुल ठीक है।" कनकमंजरी बोली—'लेकिन भूले को राह दिखाना भी तो हमारा कर्तव्य है। राजा जितशत्रु अहंकारवश यह मानता था कि मैं जिसे चाहूँ, उसे हाथी पर बिठा दूं और मैं चाहूँ तो उसे ही गधे पर बिठा दूं। वह अपने को दूसरो का भाग्य-विधाता समझता था। अत. उसकी आँखें खोल देना ठीक रहेगा। इससे उसका भ्रम तो मिटेगा ही और उसके चापलूस सभासद भी देख लेंगे कि मनुष्य अपने पाप-पुण्यो से बिगडता-बनता है।

"स्वामी! आप अपने उदाहरण को विराटनगर मे पेश करके लोगों की आस्था कर्मसिद्धान्त मे जमा दें तो यह बहुत बडा कार्य होगा। मै यह नही चाहती कि द्वेषवश आप राजा जितशत्रु से बदला लें। लेकिन यह अवश्य चाहती हूँ कि अपनी ऋद्धि दिखाकर विराट-नरेश और विराट-प्रजा की आँखें खोल दें।"

"तुम्हारी बात मैं समझ गया प्रिये!" पुण्यपाल बोला—"अब मैं तुम पाँचो को अपने साथ ले जाऊँगा। अपनी चतुरंगिणी विशाल सेना लेकर विराटनगर जाऊँगा। राजा जितशत्रु का अहंकार मिटाना भी धर्म का ही एक अंग है।"

बस अब पुण्यपाल ने अपनी जन्मभूमि जाने का निश्चय कर लिया। राज्य व्यवस्था मन्त्रियो को सौंप दी। चतुरंगिणी सेना सजाई और पाँचों पत्नियो के साथ विराटनगर को कूच कर दिया। उसके ठाट को देखकर ऐसा लगता था कि कोई चक्रवर्ती राजा दिग्विजय करने जा रहा हो।

मार्ग मे वसन्तपुर नामक नगर पडा। वहाँ के राजा ने तुरन्त ही पुण्यपाल की अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी सेना पुण्यपाल की सेना मे मिला दी। पुण्यप्रभाव से मार्ग के राजा पुण्यपाल को अपना सम्राट मानते जाते थे और उसकी सेना टिड्डी दल की तरह बढती जाती थी। मार्गों मे रुकते-ठहरते पुण्यपाल का कटक विराट-नगर की ओर बढता जाता था। □

13

"कमल-पुष्पों से पूर्ण सरोवर का स्वप्न देखकर तुमने गर्भ धारण किया था।" मन्त्री सुबुद्धि ने अपनी पत्नी कमलावती से कहा—"प्रिये ! मेरे अनुभव से हमारा पुत्र पुण्यपाल पुण्यों का धनी ही हुआ। पर इस दुष्ट राजा ने कुछ न सोचा। अपने नयनतारे के बिना भी मैं जीवित हूँ, यह सोचकर मेरा हृदय फटा जाता है।"

"यों रो-रोकर तो तुम अपनी आँखें भी खो बैठोगे।" कमलावती बोली—"मुझे तो समझाते हो और खुद रो-रोकर घुल रहे हो।

"स्वामी ! मुझे भी तो देखो, मैं माँ होकर भी पुत्र के वियोग मे जीवित हूँ।"

"तू जीवित है ?" मन्त्री बोले—"मुझे क्यों पागल बना रही है। कमला ! तूने कब से अन्न नहीं लिया ? मुझे खाने को कहती है और स्वयं कुछ खाती-पीती नहीं। ऐसे तू कैसे जीवित रह पायेगी।"

कमलावती रो पड़ी। पति-पत्नी दोनों ही पुण्यपाल की याद मे घुलते रहते थे। कभी पति पत्नी को समझाते कभी पत्नी पति को आग्रह करके कुछ खिलाती और कहती—

"खाओगे नहीं तो जीवित कैसे रहोगे ? पुत्र को देखने की

आशा में हम दोनों को जीवित रहना है। मेरा मन-बार-बार कहता है कि हमारा पुण्यपाल एक दिन आयेगा अवश्य।"

इसी आशा में दोनों अपने दिन काट रहे थे। राजा जितशत्रु ने अब उन्हें मंत्रिपद से भी हटा दिया था। एक दिन पुण्यपाल का क्रोध राजा ने मंत्री सुबुद्धि पर ही उतार दिया और कहा—

"मंत्री! तुम्हारे पुत्र पुण्यपाल ने मेरे प्रति जो उपेक्षा दिखाई, उसका कारण तुम हो। तुम पिता-पुत्र एक ही हो। तुम्हारे कारण ही पुण्यपाल ने यह स्वीकार नहीं किया कि वह मेरे कारण ही सुखी है।

"मंत्री! तुम कृतघ्न हो। मैंने तुम्हें महामात्य का पद दिया। तुम्हें सब सुविधाएं दी और तुम्हीं अपने पुत्र को समझा नहीं पाये?"

"आप एक बच्चे के अब भी पीछे पड़े हैं।" मंत्री ने अपना क्षोभ प्रकट किया—"अपने राज्य से निकालकर भी आपको संतोष नहीं हुआ? मुझे भी आपने उसके साथ क्यों नहीं जाने दिया? मैं यदि आपका मंत्री हूँ तो एक पुत्र का पिता भी हूँ।"

"तो तुम अपने पुत्र का खोट अब भी नहीं मानते?" राजा बोला—"ठीक है। विषफल का वृक्ष भी विषवृक्ष ही होता है। अब मैं अच्छी तरह जान गया कि मेरी सत्ता तुम्हें भी स्वीकार नहीं है। अतः आज से तुम मंत्री नहीं हो। घर रहकर पुत्र का शोक मनाओ।"

राजा ने महामंत्री सुबुद्धि को मन्त्रिपद से हटा दिया। सब सुविधाएँ भी छीन लीं। अपने संचित धन से ही पति-पत्नी गुजारा करने लगे। राज्य का काम चलाने के लिए राजा जितशत्रु ने एक की जगह चार मन्त्री नये नियुक्त किये। मन्त्रियों की नियुक्ति से पहले राजा ने विचार किया—

'एक की जगह मैं चार मंत्री ऐसे नियुक्त करूँगा, जो मेरी हाँ-मे-हाँ मिलाये । मेरा ही जय-जयकार करे। ऐसे व्यक्ति छोटी जातियो मे मिल सकते है। एक दरजी, एक कुम्हार, एक घांची और एक माली—ये चार मंत्री मै नियुक्त करूँगा।'

राजा ने पुन सोचा—'दरजी काटने-छांटने मे प्रवीण होता है। अत वह मेरे राज्य की समस्याओ को भी काट दिया करेगा। कुम्हार निर्माता होता है, अत कुम्हार योजना-निर्माण मे मेरी मदद करेगा।'

ऐसा मूर्खतापूर्ण विचार करके जितशत्रु राजा ने कुम्हार, घॉची, दरजी और माली—चार मत्री नियुक्त कर लिये। नियुक्त होते ही इन चारो ने राज्य को खोखला करना शुरू कर दिया। अपने रिश्तेदारो को अच्छे-अच्छे पद दे डाले और राज्य के धन से अपने-अपने घर भर लिए। राजा इनकी ओर से आँखें बन्द किये था, क्योकि ये राजा की झूठी प्रशसा करके उसका अहकार तृप्त किया करते थे।

कोई कहता—

"पुण्यपाल मूर्ख था। आपने हम जैसे तुच्छ लोगो को इतना ऊँचा उठा दिया तो आपको ही हम भाग्य-विधाता क्यो न कहे ?"

कोई कहता—

"राजा को रक और रंक को राजा बनाने की क्षमता केवल आप मे ही है। जिस पुण्यपाल ने आपको अप्रसन्न किया, वह मूर्ख ही नही, मूर्खों का मूर्ख था।"

ऐसे ही एक दिन राजा जितशत्रु का दरबार लगा था और चारो मत्री उसकी प्रशंसा कर रहे थे कि एक साथ चार राजसेवकों ने भयभीत होकर कहा—

पृथ्वीनाथ ! सावधान हो जाएँ। किसी राजा ने हमारे नगर को घेर लिया है। उसकी सेना का अन्त दिखाई नहीं देता। मानो विराटनगर के चारों ओर सेना का समुद्र उमड़ पड़ा हो।"

"हमने शत्रुओं को जीतकर ही अपना जितशत्रु नाम सार्थक किया है।" जितशत्रु ने अपने चारों मन्त्रियों की ओर देखते हुए कहा--"एक शत्रु हमारा क्या बिगाड़ सकता है ?"

राजसेवकों ने मन-ही-मन सोच लिया, 'जब बुरे दिन आते हैं तो इसी तरह बुद्धि कुंठित हो जाती है।'

इधर दरजी मन्त्री ने राजा का हौसला बढ़ाया--

"राजन् ! आप चिन्ता मत करना। हम शत्रु-सैनिकों को कैंची से कच-कच काट देंगे।"

घांची मन्त्री बोला—

"काटने की जरूरत ही क्या है ? जैसे कोल्हू में सरसों पेली जाती है, उसी तरह हम सबको पेल देंगे।"

कुम्हार मन्त्री ने कहा—

"जैसे चाक को एक डंडे से घुमाया जाता है, वैसे ही हम शत्रुराजा को चक्कर कटा देंगे।"

माली क्यों पीछे रहता ? उसने भी कहा—

"बेचारे शत्रुओं की औकात ही क्या है। जैसे बाग के सड़ियल पौधे, घास-फूड़ा और खर-पतवार उखाड़कर फेंक दी जाती है, वैसे ही सबको मैं अकेला ही उखाड़कर फेंक दूँगा।"

अपने मन्त्रियों की सूझ और उनके शौर्य की प्रशंसा सुनकर राजा फूलकर कुप्पा हो गया और सभा विसर्जित कर दी। दूसरे दिन पुनः राजसभा जुड़ी। राजा-मन्त्री यथास्थान बैठे। आक्रामक राजा का दूत सभा में आया और उसने जितशत्रु को अभिवादन करके कहा—

"राजन् ! मैं मंगलपुर, श्रीपुर, सिंहलपुर और रत्नपुर—चा राज्यों के राजा का दूत सुनाम अपने राजा का सन्देश आपक देता हूँ।

"राजन् ! तीन दिन के अन्दर या तो आप हमारे राजा की अधीनता स्वीकार कर लीजिए या फिर युद्ध के लिए तैयार रहिये।"

अब तो राजा जितशत्रु के होश उड गये। अब तक तो वह निश्चिन्त था, और किसी भी राजा के आक्रमण की बात एक मजाक ही समझता था। पर अब तो सचमुच ही युद्ध का निमन्त्रण आ गया। राजा ने दूत को तो विदा कर दिया और राजसभा विसर्जित कर तुरन्त एक मन्त्रणा-सभा जोड़ी। उसमें कुछ चुने हुए मन्त्री तथा प्रजा परिषद् के प्रतिनिधि आये। राजा ने गम्भीर होकर कहा—

"सब परिस्थिति आपके सामने है। सेना बहुत विशाल है मैंने तो यही समझा था कि हमारी किसी से शत्रुता नहीं है, तो ह पर कोई क्यों आक्रमण करेगा, पर अब तो युद्ध का निमन्त्रण आ ग गया है। युद्ध न करना कायरता होगी और युद्ध करने का अर्थ है निश्चित पराजय। आप लोग मुझे सलाह दीजिए।"

"आपके नये मंत्री किस दिन काम आयेंगे?" एक मंत्री ने कह ही दिया—पहले इनसे परामर्श करना ठीक होगा।"

"आप लोग मुझे शर्मिन्दा न करें। राजा ने कहा—"ये मन्त्री अच्छे दिनों के मत्री हैं। बुरे दिनों मे तो ये कुबुद्धि ही दे सकते है।"

"कुबुद्धि को त्याग सुबुद्धि ही अपनाइए।" उसी मन्त्री ने पुन कहा—"राजन् ! भूतपूर्व महामन्त्री सुबुद्धि से अच्छा कुशल तन्त्री, दूरदर्शी और नेक व्यक्ति आपको दूसरा नहीं मिलेगा।"

"लेकिन मैंने उनका अपमान किया है।" राजा बोला—

"उनके पुत्र पुण्यपाल को देश-निकाला दिया, इसका क्षोभ तो उन्हें है ही। दूसरे, मैंने अपमानित करके उन्हें मन्त्रिपद से भी हटाया। अत मैं किस मुंह से बुलाऊँ ?"

राजपुरोहित ने कहा—

"महाराज ! मन्त्री सुबुद्धि भले ही अब शासन-तन्त्र से सम्बन्धित नही है, पर वे देशभक्त अब भी है और रहेंगे। देश के लिए वे मान-अपमान सब कुछ भूलकर आपका साथ देंगे।"

"तो फिर मुझे ही उनके पास जाना चाहिये।" राजा जितशत्रु ने कहा—"उनके घर जाकर मुझे उन्हे मान देना चाहिए।"

मन्त्रणा-सभा को विसर्जित कर राजा तत्काल पूर्व मन्त्री सुबुद्धि के घर गया। मन्त्री को बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने स्वागतपूर्वक राजा को आसन देकर कहा—

"स्वामी आज सेवक के घर पधारे है। आज मैं बडभागी हुआ।"

राजा बोला—

"पर आज तो मैं कुछ माँगने आया हूँ। यह देश जितना मेरा है, उतना आपका भी है। आज देश पर सकट है। आपकी सुबुद्धि इसे उबार सकती है।"

राजा ने विस्तार से सब बाते मन्त्री सुबुद्धि को बताई। मन्त्री ने समस्या पर विचार किया और कहा—

"राजन् ! अपनी से बडी शक्ति से टकराना कभी बुद्धिमानी नही है। लेकिन अपने राज्य को किसी और राजा को दे देना भी अनुचित है। अत बीच का मार्ग ही ठीक रहेगा। अर्थात् हमारा राज्य भी पराधीन न हो और युद्ध भी न करना पडे। यह काम विवेक से हो सकता है। सब बाते आप मेरे ऊपर छोड़िये। मैं आपको साथ

लेकर उस आक्रामक राजा के शिविर मे जाऊँगा और पूछूँगा कि चार राज्य पाकर भी आपकी राज्यलिप्सा क्यों नही मिट रही ?"

"बस-बस यही ठीक है।" राजा ने कहा—"हमे तीन दिन का समय मिला है। अत. कल ही हम लोग चले।"

सब बाते तय करके राजा जितशत्रु प्रसन्न होकर राजभवन लौटा। दूसरे दिन जितशत्रु और मन्त्री सुबुद्धि रत्नादि की भेंट लेकर पुण्यपाल के पास गए। राजा जितशत्रु तो शिविर के बाहर ही रहा। पुण्यपाल के सेवक सुबुद्धि को भीतर शिविर मे ले गये।

पुण्यपाल एक भव्य सिंहासन पर बैठा था। उसकी पाँचो पत्नियाँ भी भिन्न-भिन्न आसनो पर बैठी थी। दो-चार सेविकाएँ भी खडी थी। अपने पिता सुबुद्धि को देख पुण्यपाल आसन से खडा हो गया। सुबुद्धि अपने पुत्र को एकाएक ही नही पहचान सका। जब पुण्यपाल उसके चरणो मे गिरा तो मन्त्री हक्का-बक्का रह गया। चरणो से उठकर पुण्यपाल ने अपनी पत्नियो से कहा—

"अपने श्वसुर के पैर छुओ।"

सुबुद्धि का सिर चकराया। पुण्यपाल को नजरें गढाकर देखा तो बोला—

"अरे पुन्ना तू ? मेरे बेटे तू यहाँ ऐसे कैसे आया ? कही मैं स्वप्न तो नही देख रहा ?"

पुण्यपाल ने पिता का हाथ पकड़ा और उन्हे अपने सिंहासन पर बिठाकर स्वय नीचे उनके चरणो मे बैठकर बोला—

"पिताजी ! आपके आशीर्वाद से ही मै आपके लिए चार पुत्र-वधुएँ और लाया हूँ। पहली कनकमंजरी को तो आप जानते ही हैं। आपकी चरण-रज की ऐसी महिमा रही कि मैं चार राज्यो का राजा भी हूँ। यह सब कैसे हुआ ? यह सब तो फिर बताऊँगा। अब

तो मैं आपको और माताजी को लेने तथा राजा जितशत्रु का भ्रम मिटाने आया हूँ।"

"भ्रम मिटाने से पहले उनकी चिन्ता मिटाओ।" मन्त्री ने कहा—"युद्ध-भय से वह बहुत चिन्तित है। आखिर तो वे हमारे राजा और हम उनकी प्रजा हैं।"

बस, पुण्यपाल ने अपने सेवक द्वारा राजा जितशत्रु को भीतर बुलवाया। राजा से कुछ छेड़-छाड़ करते हुए, पुण्यपाल ने कहा—

"राजन् ! आप जिसे चाहें, उसे राजा बना दें और जिसे चाहें रंक बना दें। फिर आज आप युद्ध से क्यों घबरा रहे हैं?"

"युद्ध बराबर वाले से किया जाता है।" जितशत्रु ने कहा—"कहाँ आप चार राज्यों के राजा और कहाँ मैं एक वत्स देश का राजा। युद्ध के लिए आपने मुझे चुना, इसका मुझे आश्चर्य है।"

"मैं तो आपसे भी छोटा हूँ।" पुण्यपाल ने कहा—"जिसका पिता आपका सेवक हो, वह भला आपसे बड़ा कैसे हो सकता है? मैं आपकी बदौलत यहीं विराटनगर में सुख भोगता था और आपको नाराज किया तो आपने देश से निकाल दिया। आपका निकाला हुआ, आपकी ही प्रजा का एक अंग यह पुण्यपाल ही आपके सामने खड़ा है।"

"तो तुम ?" राजा ने अटककर कहा—"अरे सच, तुम तो पुण्यपाल ही हो।"

राजा जितशत्रु ने पुण्यपाल को पहचान लिया। तब पुण्यपाल बोला—

'राजन् ! अपने देश से युद्ध करने में कैसे जय मिलता था ? मैं तो आपको एक सच्ची बात यह बताने आया हूँ कि मनुष्य अपने

पुण्यों से ही सब कुछ पाता है। यदि आप इस सत्य को स्वीकार कर लें तो मेरा यहाँ आना सार्थक हो गया।"

राजा जितशत्रु इतने भावुक हो गए कि रो पड़े और पुण्यपाल को हृदय से लगा लिया। आँसू पोंछकर राजा ने कहा—

"बेटा ! मेरा विश्वास करना। मैं हृदय चीरकर नही दिखा सकता। जीवन मे जो कुछ मैंने आज पाया है, वह पहले कभी नहीं पाया। अहकारवश मैं सचाई को भूल रहा था। तुमने मेरी ही नही, जगत की आँखे खोल दी है।"

"बस, तो अब एक वस्तु मै आपसे मांगूंगा।" पुण्यपाल बोला—"मेरे माता-पिता को मेरे साथ जाने की अनुमति दीजिए। मैं इन्हे रत्नपुर ले जाऊँगा। मेरा जन्म इनकी सेवा के लिए हुआ है।"

राजा जितशत्रु ने पुण्यपाल का हाथ झटका और कहा—

"तू तो मुझे जीवन भर रुलाना चाहता है। लगता है तूने मुझे क्षमा नही किया ?

"अरे पगले ! मेरे और कौन है, जो इस राज्य को सम्भालेगा ? मैंने तो जब तू छोटा था, तभी तुझे अपना उत्तराधिकारी मान लिया था। तभी तो तुझे एक युवराज की सब सुविधाएँ दी थी। अब सब भूल जा और अपने नाटक को सत्य कर दे। तूने नाटकीय रूप मे ही मुझसे राज्य मांगा था। अब मै सचमुच तुझे राज्य देता हूँ।

"बेटा ! मेरे धर्म मे अन्तराय मत बनना। अब तो मैं किन्हीं मुनि के आने तक ही विराटनगर मे रहूँगा।"

"तब तो मैं भी आपके साथ ही रहूँगा।" मन्त्री सुबुद्धि ने राजा से कहा—"जीवन भर आपके साथ रहा तो चारित्र पालन मे भी आपके साथ क्यो न रहूँ ?"

"तो आप सब मुझे अकेला छोडकर जाने की जल्दी करने लग गए ?" पुण्यपाल बोला—"मेरे ऊपर आपके वात्सल्य की छाया क्या मेरे आते ही हटेगी ? ऐसा मत करो, तात!"

"जीव तो अकेला ही है बेटा !" सुबुद्धि मत्री ने अपने पुत्र पुण्यपाल से कहा—"मैं अकेला हूँ, इस सत्य को भूलकर जीव जब अपनी इच्छाओ का परिवार बढाने लगता है, तभी वह कर्म-पक मे फँसने लगता है।"

"ये बाते अब फिर करना।" राजा ने मत्री से कहा—"अब उठो और पुण्यपाल के नगर-प्रवेश की तैयारियाँ करो।"

राजा जितशत्रु और मत्री सुबुद्धि शिविर से बाहर निकले और रथो मे बैठकर नगर को गये। विद्युत्गति से पूरे विराटनगर मे यह समाचार फैल गया कि हमारे मत्री सुबुद्धि का पुत्र पुण्यपाल ही आया है।

कमलावती ने तो प्रश्नो की बौछार कर दी। उसने अपने पति से अनेक प्रश्न पूछ डाले—

'तुम मुझे साथ क्यो नही ले गए ?"

"मेरा पुत्र अब तो बहुत लम्बा भी हो गया होगा ?"

"क्या वह मुकुट भी पहने था ?"

"बहुएँ कैसी है ?"

"बहुओ को तो साथ ले आते ?"

कमलावती के सभी प्रश्नो का उत्तर देते हुए मत्री ने कहा

"जिसके वियोग मे इतने वर्ष काट दिये, उसे देखने के लिए थोडा धैर्य रखो। अब तो वह आ ही गया है।"

दो प्रहर मे ही नगर-प्रवेश की सब तैयारियाँ आनन-फानन पूरी

हो गईं। पुण्यपाल हाथी पर सवार हुआ। आगे-पीछे अपार भीड़ थी। पांचों वहुएँ रथों मे चल रही थी। पूरे नगर में पुण्यपाल की सवारी घूमी। फिर उसका हाथी, उसके घर ही गया। माता कमलावती ने भीगे नेत्रों से पुत्र की आरती उतारी। द्वार-पूजन करके वहुओं का प्रवेश कराया।

खुशी से कमलावती का ऐसा हाल हो गया कि वह मूक होकर इधर-उधर घूम रही थी। कभी इस वहू को देखती, कभी उसको। पाँचो वहुएँ वार-वार सास के पांव पलोटती। आज दास-दासी मुँहमाँगा पा रहे थे। नगर भर मे पुण्यपाल की ही चर्चा हो रही थी।

कई दिन बीत गये पर पुण्यपाल के जीवन की घटनाएँ समाप्त नही हुईं। उसके माता-पिता दुहरा-दुहराकर उसके जीवन की बातें पूछते। वहुएँ भी बताती। राजसभा मे अव पुण्यपाल का भी एक आसन था। अव तो राजा ने सवके सामने स्पष्ट करके कह दिया—

"भाइयो! मेरा अहंकार मिथ्या था। सचाई तो यही है कि मनुष्य कर्म का पुतला है। कर्म जैसा नाच उसे नचाते हैं, उसे वैसा ही नाचना पड़ता है। मेरे इस कथन का प्रमाण पुण्यपाल से अधिक स्पष्ट दूसरा क्या होगा?"

पुण्यपाल ने अपनी सव सेना रत्नपुर वापस भेज दी थी। यहाँ रहकर भी वह उड़नखटोले से अपने शासित राज्यों की देख-भाल करने जाता। राजा जितशत्रु ने पुण्यपाल से वहुत आग्रह किया कि विराटनगर के राजसिंहासन पर वैठो। पर पुण्यपाल ने कह दिया कि जव तक कोई मुनि यहाँ न आये, तव तक तो आप ही राज्य-भार सम्हाले रहें। राजा ने पुण्यपाल की यह वात मान ली थी।

□

14

एक बार यशोधर मुनि विराटनगर मे आये। उद्यानरक्षक ने उनके आगमन की सूचना राजा जितशत्रु को दी तो राजा ने अपने बहुमूल्य आभूषण उद्यानरक्षक को दे डाले। इस दिन की प्रतीक्षा राजा को बहुत दिनो से थी। सिंहासन से नीचे उतर राजा ने उद्यान की ओर मुंह किया और घुटनो के बल बैठ मुनि की भाव-वन्दना की। तदनन्तर उद्घोषक ने मुनि के पधारने का सवाद समस्त नगरी मे प्रचारित कर दिया। धार्मिक जनो का मन मयूर नृत्य कर उठा। सभी जन मुनि-दर्शन करने उद्यान जाने की तैयारियाँ करने लगे।

राजा जितशत्रु अपनी रानी अनुरागवती और समस्त सभासदो के साथ उद्यान गया। महामत्री सुबुद्धि अपनी पत्नी कमलावती को लेकर पहुँचे। पुण्यपाल अपनी पाँचो जीवन-सगिनियो को लेकर मुनिश्री की देशना सुनने गया। नगर के ऊँच-नीच, धनी-निर्धन, लकड़हारे, ग्वाले, व्यापारी आदि हजारो की सख्या मे पहुँचे। बड़े-बूढ़े लाठी टेक-टेककर जीवन का सार तत्त्व पाने मुनि के समवसरण मे विराजे।

अशोक वृक्ष के नीचे एक शिला पर मुनि यशोधर बैठे थे। उनके आस-पास श्रमण समुदाय था और दूर-दूर तक बालू से सिंचे

एक बड़े मैदान मे श्रोताजन बैठे थे। सभी जन मुनि को भावभीनी अमृत भरी देशना दत्तचित्त होकर सुन रहे थे। मुनि ने देशना के बीच कहा—

"बार-बार राजा बनोगे, रंक बनोगे। जिसके एक बार पति बनोगे, उसी के फिर भाई भी बनोगे। नाटक के इस मंच पर यो ही तुम अपनी भूमिका कब तक निभाते रहोगे? यह कर्म तुम्हे इसी तरह नचायेगा। कर्मों के बधन को काटकर मुक्ति-वधू का हाथ पकड़ो तो जीवन अखण्ड सुख और आनन्द से भर जाएगा।"

मुनि की देशना सुनकर राजा जितशत्रु, मत्री सुबुद्धि आदि कई प्रतिबुद्ध हो गए। इन सभी ने चारित्र ग्रहण कर कर्मक्षय करने का निश्चय कर लिया। मुनि के समवसरण से लौटकर नरपाल जितशत्रु ने बड़े आडम्बर के साथ पुण्यपाल का राज्याभिषेक किया। पुण्यपाल विराटनगर का राजा बना। अब दीक्षार्थियो की तैयारियां होने लगी। विराटनरेश पुण्यपाल ने अपने माता-पिता तथा पूर्व राजा जितशत्रु और रानी अनुरागवती का दीक्षा महोत्सव मनाया। नगर भर मे धर्म का उत्साह छा गया।

चारो मोक्षार्थी शिविकाओ मे बैठकर उद्यान की ओर चले। आँखो मे आँसू भरे प्रजाजनो की भीड उन पर पुष्प-वर्षा कर रही थी। यथासमय चारो उद्यान पहुँचे। राजसी वेश उतार कर चारो ने पच-मुष्टि केश-लोचन किया। फिर मुनिवेश धारण किया। मुनि यशोभद्र ने चारो को चारित्र सम्बन्धी देशना दी। कुछ दिन बाद राजर्षि जितशत्रु और मुनि सुबुद्धि ने गुरु के साथ अन्यत्र विहार किया। साध्वी द्वय—कमलावती और अनुरागवती साध्वी सघ मे सम्मिलित हो गईं।

पुण्यपाल अब विराटनगर मे रहकर ही पांचो राज्यो का शासन चलाने लगा। मुख्य राजधानी उसने विराटनगर को ही बनाया। मुनि

यशोभद्र से उसने श्रावकव्रत ग्रहण कर लिये थे। अतः श्रावकाचार का पालन करते हुए वह अपना जीवन बिताने लगा। उसकी पांचों पत्नियां भी उत्तम कोटि की श्राविका थी। कालान्तर में पांचों गर्भवती हुई और पुण्यपाल पांच पुत्रों का पिता बन गया। पांचों राजकुमार देवकुमार से सुन्दर थे।

कनकमजरी के अगजात का नाम कनकसेन था। सौभाग्यमजरी से उत्पन्न पुत्र का नाम पुण्यपाल ने सुभागसेन रखा। तिलकमजरी के जाए को तिलकसेन कहा जाता था। कुसुमश्री से उत्पन्न पुत्र का नाम कुसुमसेन और पुष्पवती के अगजात का पुष्पकुमार था। पुण्यपाल ने पांचों पुत्रों के नाम उनकी जन्मदात्रियों के नाम के अनुसार ही रखे थे। पांचों का लालन-पालन पांच-पांच धायें करती थी। द्वितीया के चन्द्र के समान पांचों राजकुमार दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे।

आठ वर्ष की उम्र में पांचों कलाचार्य के पास रहकर विद्या और कलाएँ पढ़ने-सीखने लगे। कालान्तर में पांचों बहत्तर कलाओं में निपुण हो गए। समय यों ही सर-सर बीतता जाता था। वर्षों पो ही बीत चले।

पुण्यपाल ने अपने पांचों पुत्रों का विवाह सुन्दर राजकुमारियों के साथ कर दिया। पुत्रवधुओं की रुन-झुन से पुण्यपाल का अन्तःपुर गूँजने लगा।

एक बार मुनि धर्मघोष विराटनगर में आये। वे मुनि केवलज्ञानी मुनि थे। लोकालोक का ज्ञान वे प्राप्त कर चुके थे, इसलिए जन्म-जन्मान्तरों का भेद जानते थे। उनकी देशना सुनने सम्राट पुण्यपाल पांचों रानियों, पुत्रों और पुत्रवधुओं के साथ गए। मुनि ने अमृतभरी देशना देते हुए कहा—

"इस जगत मे कोई राजा है तो कोई दर-दर का भिखारी है। किसी ने उच्च कुल मे जन्म पाया है तो कोई चाण्डाल के घर जन्मा है। किसी ने स्वस्थ और सुन्दर शरीर पाया है तो कोई अधा, वहरा लँगडा और कोढी है।

"भव्य जीवो! आखिर इस विपमता का कारण क्या है? विचार करो, मनुष्य-जन्म पाकर भी जीव दु.खी क्यो है? इस भेद का और वैपम्य का कारण मात्र कर्मो का फ़ेर है। शुभकर्म भौतिक सुखो का अम्वार लगा देते है और अशुभकर्म वाला दीन-मलीन और दु खी रहता है। अतः सामारिक सुखो के लिए पुण्यो का सचय करो।

"भव्य जीवो! पुण्य सचय से भी तुम ससार मे ही उतरोगे। सोने की जजीर का वधन भी तो वधन ही है। अत. दोनो तरह के कर्मो का क्षय करने से ही अनन्त और अखण्ड मोक्ष-सुख मिलेगा। इसे पाने के वाद जीव फिर जन्म-मरण और जरा-व्याधि से सदा-सदा के लिए छुटकारा पा जाता है। चाहे कोई कितने ही जन्म ले, पर अन्तत जीव को शिवपुर मे ही जाना है।"

मुनि की देशना समाप्त हुई तो पुण्यपाल ने पूछा—

"हे मुने! पूर्वभव मे मैंने ऐसे क्या शुभकर्म किये थे कि पाँच राज्यो का राजा वना। देवागना-सी सुन्दर पाँच पत्नियाँ मिली। इसके विपरीत मैंने जीवन मे कप्ट भी वहुत भोगे। मैं सागर मे भी धकेला गया। अत· मैंने अशुभ कर्म भी किये ही होगे। आप तो जन्म-जन्मान्तरो का रहस्य जानते है। अत मैं आपके श्रीमुख से अपना पूर्वभव सुनना चाहता हूँ।"

केवली मुनि धर्मघोप वोले—

"हे राजन्! हर जीव पाप-पुण्य—दोनो तरह के वध लेकर जन्मता है। कोई पुण्य अधिक लेकर आता है तो कोई पाप का वध

अधिक करता है। क्रम-क्रम से दोनों का उदय-अस्त होता है, इसीलिए जीवन में उतार-चढ़ाव आते हैं। तुम तो वस्तुतः पुण्यार्थी जीव हो। तुम्हारा पुण्यपाल नाम सर्वथा सार्थक ही है। पूर्वभव में तुमने पुण्यों का संचय अधिक किया था, इसीलिए यह समृद्धि प्राप्त की और कुछ पाप भी किये, इसलिए दुःख भी भोगे। अब अपना पूर्वभव विस्तार से सुनो, सब कुछ स्पष्ट हो जायगा।"

इतना कह मुनिवर पुण्यपाल का पूर्वभव उसे सुनाने लगे। समस्त श्रोता पुण्यपाल का पूर्वभव दत्तचित्त होकर सुनने लगे।



15

मगध देश अपनी व्यापारिक समृद्धि और सम्पन्नता के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। इस देश का केन्द्रीय नगर था राजगृह। इसी नगर मे रहकर ध्वजारथ नाम का राजा मगध देश का शासन करता था।

राजगृह नैसर्गिक शोभा से सम्पन्न वडा ही आकर्षक नगर था। वैभारगिरि आदि पाँच पर्वतो से घिरे इस नगर मे वाग-वगीचो का सौन्दर्य भी अपूर्व था। इस नगर के भव्य भवन वहुत ऊँचे और आकर्षक थे, क्योंकि यहाँ सेठ-साहूकारो की ही अधिकता थी। धनी-निर्धन सभी जन राजा ध्वजारथ के सुशासन और न्यायरक्षा के कारण सुखी थे।

श्रेष्ठि-व्यापारियों के इस नगर मे गगदत्त नाम का एक कोटीश्वर श्रेष्ठी रहता था। गगादेवी उसकी सेठानी का नाम था। पति-पत्नी—दोनों ही सरल स्वभाव के धर्मनिष्ठ प्राणी थे। संतो की भक्ति और धर्म मे रुचि दोनो मे कूट-कूटकर भरी थी। सेठानी गगा-देवी के दुर्गावती नाम की एक छोटी वहन और थी, जो इसी राजगृह मे धनदत्त नामक श्रेष्ठी को व्याही थी। दोनो वहनें एक दूसरे के घर आती-जाती थी। विशेष वात यह थी कि दोनो की ही गोद सूनी थी। फिर भी दोनो को आशा थी कि यदि कुछ पुण्य शेष हुए तो कभी

संतान भी होगी ही। लेकिन भाग्य ने दुर्गावती के साथ एक क्रूर खेल खेला कि वह विधवा हो गई। सेठ धनदत्त निस्संतान मरे।

दुर्गावती के जेठ-देवरों और कुटुम्बियों ने अपनी जालसाजी से उनके पति का धन हथिया लिया। अब वह रोटी के लिए भी जेठ-देवरो की मुँहताज हो गई। गगादेवी से अपनी वहन की यह दशा नही देखी गई। उसने अपनी विधवा वहन दुर्गावती को अपने पास बुलवा लिया और कहा—

"वहन ! तेरे कोई संतान होती तो धन के लिए झगड़ा किया जाता। तेरे लिए रोटी-कपडो की यहाँ कोई कमी नही है। तू मेरे पास रहकर सुख से अपना जीवन विता सकती है।"

"अव तो तुम्ही मेरे सव कुछ हो।" दुर्गावती ने कहा—"जव पति ही चले गए तो धन क्या चीज है ? अच्छा हुआ धन गया वरना चिन्ता भी वढ जाती। तुम्हारे सहारे धर्मध्यान करते हुए मै अपना जीवन विता दूंगी।"

दोनो वहनें वडे प्रेम से रहने लगी। सेठ गगदत्त भी अपनी साली दुर्गावती का वडा सम्मान करते। दोनो वहनें साथ-साथ उपाश्रय जाती। साथ ही खाती-पीती और उठती-वैठती। तीनो प्राणियों का जीवन वड़े सुख से वीत रहा था।

एक दिन गंगदत्त ने सेठानी गगादेवी से रात के एकान्त मे कहा—

"प्रिये ! हमने तो सोचा था कि तुम्हारी वहन की संतान को ही गोद रख लेंगे। पर वह वेचारी तो विधवा हो गई। आखिर हमारे इस अपार धन का क्या होगा ? घर मे धन की कमी नहीं है, पर हमारे वाद इसे कौन भोगेगा ?"

"आपने मेरा दुःख ताजा कर दिया।" सेठानी वोली—

"आप तो धन-भोग के कारण ही दु खी है, पर मैं तो अपने सूने मातृत्व के कारण रात-दिन दु:खी रहती हूँ। आपने मेरी आज तक नही सुनी। यदि मेरी माने तो एक बात कहूँ ?"

"हाँ-हाँ कहो।" उत्सुक होकर सेठ ने कहा—"आज मैं तुम्हारी हर बात मानने को तैयार हूँ।"

सेठानी बोली—

"स्वामी ! आप कुलदेवी को प्रसन्न कीजिए। यदि उसे हमारे कुल की कुलदेवी बने रहना है तो एक पुत्र का वरदान अवश्य देगी।"

"पुत्र देना देवी के हाथ की बात नही होती।" सेठ ने मुस्कराकर कहा—"फिर भी मैं तुम्हारी बात मानूंगा। क्या पता देवी के बहाने ही हमारे पुण्यो का उदय होना भाग्य मे लिखा हो।"

बस, अब दूसरे ही दिन श्रेष्ठी गगदत्त ने कुलदेवी की आराधना शुरू कर दी। सातवे दिन देवी प्रकट हुई। उसने पूछा—

"सेठ ! तुम्हारा कौन-सा प्रिय करूँ ? मैं तुमसे प्रसन्न हूँ।"

"आपसे क्या छिपा है ?" सेठ बोला—"मातेश्वरी ! मुझे एक पुत्र की चाह है।"

अपने अवधिज्ञान से देवी ने गगदत्त का भाग्य देखकर कहा—

"सेठ ! तुम्हे पुत्र की प्राप्ति तो अवश्य होगी। लेकिन तुम्हारे धन का नाश हो जाएगा। यही तुम्हारा भविष्य है।"

इतना बताकर देवी अन्तर्धान हो गई। गंगदत्त धन-नाश की बात तो मानो भूल ही गया। पुत्र-प्राप्ति के वरदान से वह नाच उठा। सेठानी भी इस खुशखबरी को सुनकर फूल उठी। छोटी बहन दुर्गावती ने भी प्रसन्न होकर कहा—

"अब मैं मौसी बन जाऊँगी। कोई मुझे मौसी कहकर बोलेगा।"

"मौसी और माँ मे भेद ही क्या है?" सेठानी गंगादेवी ने अपनी बहन दुर्गावती से कहा—"वह हम दो माताओं का पुत्र होगा।"

कोटीश्वर सेठ गंगदत्त ने वरदान-प्राप्ति के उपलक्ष्य में खूब दान-पुण्य किया। फिर समयान्तर से सेठानी गंगादेवी गर्भवती हो गई। उसके गर्भवती होते ही गंगदत्त के कपड़े के सात गोदाम जल गए। बाईस लाख का धन राख का ढेर हो गया। फिर तो ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों गंगदत्त का धन कपूर की गंध की तरह उड़ता जाता था। अन्त ऐसा हुआ कि सेठ गंगदत्त पूरी तरह निर्धन हो गया। बस, एक हवेली ही रह गई थी। घर में एक भी नौकर नही था। जैसे-तैसे गुजर हो रही थी। लेकिन राजगृह के लोग अब भी उसे सेठ गंगदत्त ही मानते थे और कहते थे कि हाथी कितना ही घट जाए, एक बिटौरे के बराबर तो रहता ही है। हवेली के भीतर सेठ कैसे जी रहे है, इस असलियत को तो वे ही जानते थे।

अब एक दिन सेठानी गंगादेवी ने पुत्र प्रसव किया। छोटी बहन दुर्गावती ने घी-गुड़-सोंठ का मिश्रण बनाकर जच्चा को पिलाया। घर में कुछ भी नही था। सेठानी गंगादेवी ने आँखों में आँसू भरकर अपने पति से कहा—

"नगर वालों से अपनी दुर्दशा अब कैसे छिपाओगे? घर के भीतर तो हम भूखे भी रह सकते है। पर इस अभागे का जन्मोत्सव तो मनाना ही पड़ेगा। कैसे मनाओगे?"

"इसका प्रबन्ध मैंने पहले ही कर लिया ... ।"

बोले—"दस महीने पहले मैंने कुछ मुहरें गाडकर सुरक्षित कर ली थी। वे ही इस आड़े वक्त मे काम आयेगी।"

सेठानी की चिन्ता मिट गई। सेठ ने गढे धन का स्थान खोदा तो विलख पड़ा वेचारा। सब मोहरें कोयला बन गई थी। हाय-हाय करके अब सेठ ने कहा—

"भाग्य के विरुद्ध सचित धन भी काम नही आता। हाय! मैं क्या करूँ?"

"भाग्य पर भरोसा रखो।" सेठानी ने कहा—"धन नही रहा तो क्या हुआ, आपकी साख तो बनी है। अपने पड़ोसी सेठ सागरचन्द्र से दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ उधार ले लो। कभी तो दिन बदलेंगे ही, तब दे देना।"

इसके अलावा दूसरा चारा भी नही था। सेठ गगदत्त सागरचन्द्र के घर गये। उनकी रोनी सूरत देखकर सागरचन्द्र पहले ही समझ गया कि कुछ लेने आये होगे। अत पहले से ही कह बैठा—

"आओ भाई गंगदत्त! कैसे आये? अरे भाई, आजकल तो बाजार बहुत मन्दा चल रहा है। छः महीने से जुडी पूंजी खा रहा हूँ। जो ले जाते है, देने का नाम ही नही लेते। खैर छोडो, बताओ, तुम कैसे आये?"

गगदत्त का दिल बैठ गया। ऋण मांगने का साहस नही हुआ। पर लेना तो था ही, अतः कड़ा जी करके कह दिया—

"सेठजी! मैं भी आप से दस हजार मुद्राएँ ऋण लेने आया हूँ। जो कहोगे, वह व्याज दूँगा। इस समय मेरी बात का सवाल है।"

"देखो भाई गगदत्त! वैसे तो मेरा धन तुम्हारा अपना ही है। लेकिन लेन-देन के कुछ नियम होते है। मूल तुम चाहे जब दो, पर व्याज तो मैं हर महीने लूंगा। तुम व्याज कहाँ से दोगे?"

गंगदत्त सोचने लगा—'यह धन मैं जन्मोत्सव के लिए ले रहा हूँ। अत. खर्च करना है। अत: हर महीने ब्याज कहाँ से दे पाऊँगा ? यदि व्यापार के लिए ऋण लिया होता तो लाभ में से ब्याज निकलती जाती।'

गगदत्त को मौन देख सागरचन्द्र ताड गया कि अच्छी चिड़िया फँसी है। अत. पूछा—

"यह तो बताओ, तुम्हें धन की जरूरत क्या है।"

"पुत्र का नामकरण संस्कार कराना है।" गगदत्त बोला—"व्यापार का हाल तो तुम जानते ही हो। मुझे निराश मत करो, मैं तुम्हारी पाई-पाई चुका दूँगा।"

"तो फिर स्पष्ट सुनलो। बुरा मत मानना।" सागरचन्द्र ने बड़ी बेहयाई से कहा—"जब तक ब्याज न दो, तब तक तुम्हारा पुत्र मेरे यहाँ रहेगा। जब मूल-ब्याज—दोनों दे दो, तब अपने पुत्र को ले जाना।"

मरता क्या न करता ? गगदत्त ने ऋण की शर्तें स्वीकार कर ली। लिखा-पढ़ी हो गई। पाँच साक्षियों के हस्ताक्षर भी हो गये। ऋण लेकर गगदत्त अपने घर आया। जन्म के बारहवें दिन गगदत्त ने अपने पुत्र का नामकरण संस्कार बड़ी धूमधाम से कराया और पुत्र का नाम देवदत्त रखा।

नामकरण वाले ही दिन सागरचन्द्र के आदमी देवदत्त को लेने आ पहुँचे। गगदत्त ने उनसे कहा—

"भाइयो ! मेरी ओर से सेठ सागरचन्द्र से कहना कि देवदत्त को महीने भर तक तो मां का स्तन-पान कर लेने दें। महीने भर बाद वे अवश्य ले जावें।"

सेवक चले गये। सागरचन्द्र मान तो गया, पर उसने अपने

पहरेदार गंगदत्त के घर रख दिये कि गगदत्त कही पुत्र को लेकर राजगृह न छोड़ जाए। महीना भर बीता। सागरचन्द्र के आदमी देवदत्त को ले गए। सेठानी गंगादेवी तो रोते-रोते मूर्च्छित हो गई। मौसी दुर्गावती भी खूब रोई। दैव के आगे किसी का वश नही चलता।

इधर सागरचन्द्र के घर खुशियाँ छा गईं। उसने अपनी पत्नी श्रीमती से कहा—

"प्रिये ! भाग्य जब देता है तो छप्पर फाडकर देता है। देखो हमारे कोई सन्तान नही थी। अब यह देवदत्त हमारा वश-भास्कर हो गया।"

"ओस चाटने से कभी प्यास नही बुझती। प्यास तो घर के घड़े के जल से ही बुझती है।" सेठानी श्रीमती ने कहा—"किसी दिन मूल-ब्याज—दोनो देकर गगदत्त इसे ले जायगा, तब आप क्या कर लेंगे ?"

"अब तो यह इसी घर मे रहेगा।" सागरचन्द्र बोला—"गगदत्त कंगाल है और रहेगा। वह क्या खाकर मूल-ब्याज—दोनो चुकायेगा ? बडा होकर देवदत्त हमे ही अपना माता-पिता समझेगा। तुम भी इसे अपना ही पुत्र मानो।"

सेठानी श्रीमती पति के विचारो से सहमत हो गई। पाँच धायें देवदत्त का पालन-पोषण करने लगी। अब वह रत्नजटित चन्दन के पालने मे झूलता था।

इधर सेठानी गगादेव और उसकी छोटी बहन दुर्गावती—दोनो देवदत्त की याद मे रोती थी। एक दिन दुर्गावती ने अपनी बहन गंगादेवी से कहा—

"बहन ! पुत्र के हित मे मेरी एक बात मान लो तो कहूँ ? मैं

श्रेष्ठी सागरचन्द्र के घर दासी बनकर रहूँगी तो उसका सब तरह से ख्याल रखूँगी। वैसे भी घर में तंगी तो है ही।"

गगादेवी कुछ देर तो मौन रही। फिर बोली—

"माँ का प्यार न मिला तो मौसी का प्यार तो उसे मिलता ही रहेगा। मैं बड़ी स्वार्थिन हूँ। अपने स्वार्थ के लिये मैं सहमत हूँ कि तू सागरचन्द्र के घर नौकरी कर ले।"

"यह तो मेरा ही स्वार्थ है।" दुर्गावती बोली—"एक दिन तुम्हीं ने कहा था कि माँ और मौसी में अन्तर क्या है। मैं उसे अपना ही पुत्र समझती हूँ। हम दोनों के बीच वही एक सहारा है।"

दुर्गावती को सागरचन्द्र जानता भी नहीं था। अतः बिना किसी सन्देह के उसने दुर्गावती को अपने घर की सेविका के रूप में रख लिया। दुर्गावती गृह-सेविका थी, सो सेठ के घर ही रहती थी। देवदत्त का वह बहुत ख्याल रखती थी और इस बात से वह बहुत सन्तुष्ट थी कि देवदत्त सुखों के झूले में झूल रहा था।

इधर सेठानी गगादेवी और सेठ गगदत्त एक दिन रात में ही उठ गए। राजगृह में रहना उनके लिए मुश्किल हो गया। एक तो पुत्र का वियोग, दूसरे, दुर्गावती का भी घर न रहना और तीसरी बात यह कि निर्धनता पैर जमाए बैठी थी। राजगृह में रहकर उनसे मेहनत-मजूरी भी नहीं होती। अतः अपने दुर्दिन काटने के लिए वे कहीं अन्यत्र चले गए।

अब सेठ सागरचन्द्र ने सुना कि गगदत्त अपनी पत्नी के साथ कहीं अन्यत्र चला गया है तो उनका यह विश्वास पक्का हो गया कि देवदत्त को मुझसे अब कोई नहीं छीन सकता।

□

16

समयान्तर से देवदत्त ने आठ बसन्त देख लिये। वह आठ साल का हो गया। सेठ सागरचन्द्र ने धूमधाम से उसका विद्यारम्भ किया। देवदत्त अब कलाचार्य के पास रहकर कलाएँ सीखने लगा। व्यापार-वाणिज्य-कला में उसकी प्रारम्भ से ही रुचि रही। सब मिलाकर वह बहत्तर कलाओं को रुचिपूर्वक सीख-समझ रहा था।

देवदत्त के पीछे सेठानी श्रीमती गर्भवती हुई। नौ महीने बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया। बारहवें दिन उसका नामकरण संस्कार हुआ। राजगृह के गणमान्य श्रेष्ठी उसके प्रीतिभोज में आये। सागरचन्द्र ने इसका नाम भानुदत्त रखा। भानुदत्त का लाल-पालन भी पांच धायों की देखरेख में हो रहा था।

एक दिन सेठानी श्रीमती ने अपने पति से कहा—

"देवदत्त से अब हमें क्या लेना-देना? अपना आखिर अपना ही होता है। अब तो हमारा अगजात भानुदत्त ही सब कुछ है। नकली देवदत्त को मैं अपनी सम्पत्ति में से फूटी कौड़ी नहीं देने दूंगी।"

"बात तो तुम्हारी ठीक है।" सागरचन्द्र ने कुछ रुककर कहा—"लेकिन, देवदत्त से मैं कहूँगा कैसे कि तू हमारा पुत्र नहीं है?

यदि मैं उसे अपना पुत्र नहीं मानूंगा तो राजगृह में मेरी बड़ी निन्दा होगी।"

"तो फिर कुछ ऐसा उपाय करो कि सांप भी मर जाय और लाठी भी नहीं टूटे।" सेठानी बोली—"भानुदत्त का अधिकार भी न छिने और देवदत्त अपने को पराया महसूस भी न करे।"

"समय तो आने दे।" सागरचन्द्र बोला—"समय आने पर मैं सब ठीक कर लूंगा।"

ये सब बातें देवदत्त की मौसी दुर्गावती ने भी सुनली। अब वह विशेष सतर्क रहने लगी। समय बीतता गया। देवदत्त युवा-तरुण होकर पर आ गया। भानुदत्त भी अब समझदार हो गया था। श्रेष्ठी सागरचन्द्र ने देवदत्त का विवाह इन्दुमती नामक एक श्रेष्ठि-कन्या के साथ कर दिया। अब वह एक अलग भवन में अपनी पत्नी के साथ रहने लगा। यह सब सेठानी श्रीमती को अखरता था। एक दिन उसने देवदत्त से झल्लाकर कहा—

"देवदत्त! अब तो तू सब तरह से योग्य हो गया है। तेरा भाई भानुदत्त अभी छोटा है। तुझे चाहिए कि अपने पिता का व्यापार तू सम्भाल ले। बेटा जब बड़ा हो जाता है तो मां-बाप का हाथ बँटाता है।"

"मां! मैं सब कुछ करने को तैयार हूं।" देवदत्त बोला—"पर पिताजी तो मुझे कुछ करने ही नहीं देते। तुम उनको भी समझाओ।"

सेठानी श्रीमती ने अपने पति से एकान्त में कहा—

"स्वामी! इस देवदत्त को व्यापार के बहाने आप समुद्र पार के किसी देश में भेज दो। भाग्य ने चाहा तो कांटा सदा के लिए ही निकल जाएगा। फिर हमारी सम्पत्ति का एकमात्र उत्तराधिकारी हमारा भानुदत्त ही रहेगा।"

"तूने मेरे मन की बात छीन ली।" सागरचन्द्र ने कहा—"यही मैं भी सोच रहा था। दुनिया की नजरो मे मेरा पितृत्व भी बना रहेगा।"

बस, अब तो देवदत्त सागर पार जाने की तैयारियाँ करने लगा। सागरचन्द्र ने निर्यात किया जाने वाले माल से उसका जहाज भरवा दिया। दुर्गावती अवसर की खोज मे थी। उसने मौका देख देवदत्त को उसके जन्म का रहस्य बताकर कहा—

"बेटा! मैं अभागिन तेरी मौसी तेरे ही कारण इस सेठ की दासी बनी हुई हूँ। यह सब बताने का मौका आज ही आया है। सब बाते तू जान ही गया है। अत अब तू लिखा-पढी करके ही व्यापार करने जाना।"

"मैं सब कुछ समझ गया मौसी।" देवदत्त बोला—"मेरे पीछे तुम अपनी बहु इन्दुमती का ख्याल रखना। विदेश से लौटकर मैं अपने पिता का ऋण सागरचन्द्र को चुकाऊँगा। फिर अपने माता-पिता की खोज करके उन्हे राजगृह ले आऊँगा। भानुदत्त और मुझमे जो भेदभाव ये लोग रखते है, वह मुझसे छिपा नही है।"

इस तरह मौसी दुर्गावती से सब कुछ जानने और समझने के बाद देवदत्त श्रेष्ठी सागरचन्द्र के पास आया और बोला—

"पिताजी! विदेश से लौटकर मै आपकी पूंजी आपको लौटा दूंगा और जो लाभ होगा, उस पर मेरा अधिकार रहेगा।"

"सो तो रहेगा ही।" सागरचन्द्र बोला—"लेकिन तू और मैं क्या अलग है? मेरा लाभ तेरा है और तेरा मेरा है।"

"आपकी बात ठीक है पिताजी!" देवदत्त बोला—"लेकिन जब पुत्र समर्थ हो जाए तब उसे पिता की लक्ष्मी का भोग नही करना चाहिए। पिता की लक्ष्मी माता के समान होती है। अत. अब मैं स्व-अर्जित धन का ही भोग करूँगा।"

"मुझे तेरी बात सौ बार स्वीकार है।" सागरचन्द्र बोला—"तुझ जैसे साहसी, विवेकी और उद्यमशील पुत्र को पाकर मैं धन्य हूँ।"

"तो फिर आप एक स्वीकृति-पत्र लिख दीजिए। तभी मैं व्यापार करने सागर पार जाऊँगा।"

"क्या पिता-पुत्र में विश्वास नाम की कोई चीज नहीं होती?" सागरचन्द्र बोला—"तेरी शर्त तो मैं सौ बार स्वीकार कर ही रहा हूँ। फिर लिखा-पढ़ी की क्या जरूरत है?"

"व्यापारिक लेन-देन और सिद्धान्त की दृढ़ता तो पिता-पुत्र में भी होती है।" देवदत्त बोला—"कहावत भी है, 'हिसाब जौ-जौ बख्शीस सौ-सौ'। इस समय हम पिता-पुत्र न होकर व्यापारी हैं।"

सागरचन्द्र निरुत्तर हो गया। उसने एक शर्त-पत्र लिखा—

"मैं सागरचन्द्र, सुपुत्र रत्नचन्द्र, अपने पुत्र देवदत्त, जो भानुदत्त से दस वर्ष बड़ा है, को व्यापार हेतु विदेश भेज रहा हूँ। इसे मैंने बारह करोड़ का माल निर्यात के लिए दिया है। विदेश से लौटकर यह बारह करोड़ की नकद पूंजी मुझे वापस करेगा और जो लाभ यह कमायेगा, उस पर एक मात्र इसी का अधिकार रहेगा। भानुदत्त और मैं सागरचन्द्र उस लाभ में से कुछ भी लेने के अधिकारी नहीं हैं।"

यह शर्त-पत्र लेकर देवदत्त ने शुभ मुहूर्त में प्रस्थान किया। अनुकूल पवन पाकर वह जलयान पाटणपुर नामक नगर में पहुँचा। जब भाग्य अनुकूल होता है तो सभी कुछ अनुकूल होता है। देवदत्त ने पाटणपुर में ही अपना माल बेचा और इच्छित धन कमाया। भाग्य ने उसे और भी कुछ दिया।

पाटणपुर के सार्थवाह ने देवदत्त को अपनी पुत्री के लिए पसन्द कर लिया। [illegible]

नामक चार श्रेष्ठि-कन्याओ का विवाह देवदत्त के साथ हो गया। इन चारो के पिताओ ने रत्न, स्वर्ण, मणि-मुक्ता, वस्त्र आदि पर्याप्त धन देवदत्त को दहेज मे दिया। चारो पत्नियों को पाकर देवदत्त कुछ दिन के लिए पाटणपुर में ही रह गया।

इधर सागरचन्द्र सोचता था कि देवदत्त अभी नही लौटा तो अब क्या खाक लौटेगा? लगता है वह तूफान की चपेट मे आकर जहाज सहित समुद्र मे डूब गया। मेरा बारह करोड का धन गया सो गया, भानुदत्त का साझीदार मारा गया।

कुछ दिन का दाम्पत्य सुख भोगने के बाद देवदत्त को अपने कर्त्तव्य की याद आई। माता-पिता का ऋण चुकाकर स्वय को सागरचन्द्र के बन्धन से मुक्त करना उसका कर्त्तव्य था। अत अब अपने श्वसुरो से विदा ली और चारो पत्नियो को साथ लेकर राजगृह की ओर चल दिया। राजगृह मे बिकने लायक माल उसने पाटणपुर से अपने जहाजो मे भर लिया था। अब उसके पांच जहाज थे। एक-एक जहाज उसके श्वसुरों ने दहेज में दिया था।

इधर मे भी उसे अनुकूल पवन मिला। मार्ग मे उसने अपनी चारो पत्नियो को अपने जीवन का रहस्य बताकर कहा था कि राज-गृह मे दासीरूप मे तुम्हे दुर्गावती मिलेगी, वह तुम्हारी मुखिया सास है। तुम चारो उसी के पैर छूना। श्रीमती सेठानी के मत छूना। इसके अलावा इन्दुमती नामक तुम्हारी एक बडी बहन भी है।

देवदत्त के पांचो जहाज यथासमय राजगृह पहुँचे। सागरचन्द्र उसकी अगवानी करने आया। पूरे राजगृहवासियो ने देवदत्त के पुरुषार्थ और भाग्य को सराहा। चारो पत्नियो को लेकर देवदत्त घर पहुँचा। चारो ने दुर्गावती के पैर छुए तो सेठानी श्रीमती बोल पड़ी—

"बहुओ, यह क्या करती हो ? तुम्हारी सास तो मैं हूँ। इस दासी के पैर क्यों छूती हो ?"

"हमारे पति इनकी बड़ी बहन के अंगजात हैं। अतः हमारी मुखिया सास हैं ये। आपसे तो हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।"

पत्नियों के स्वर-में-स्वर मिलाकर देवदत्त बोला—

"आज से ये इस घर की दासी नहीं हैं। अब मैं अपने घर रहूँगा। आपकी कोख से तो भानुदत्त जन्मा है। मैं तो . ।"

"मैं कब तुझे अपना कहती हूँ।" सेठानी श्रीमती क्रोध में खिसियाकर बोली—"पहले तो हमारा वह कर्ज दे, जो तेरे बाप ने लिया था। फिर वह भी दे, जो तेरी पढ़ाई और विवाह में खर्च हुआ है।"

"आपकी पाई-पाई मिलेगी।" यह कहकर देवदत्त सीधा राजा ध्वजारथ की राजसभा में गया। राजा को रत्नादि की भेंट देकर देवदत्त ने अपनी बात कह डाली। न्यायप्रिय राजा ने तुरन्त श्रेष्ठी सागरचन्द्र को बुलवाया और देवदत्त से ऋण का उचित धन दिलवाकर उसे बन्धनमुक्त करा दिया। अब देवदत्त अपने पिता की हवेली में पहुँचा।

पिता के भवन को देवदत्त ने अच्छी तरह से साफ कराया। उसके पिता द्वारा गाड़ा गया जो धन कोयला बन गया था, वह अब देवदत्त को चमकती हुई स्वर्णमुद्राओं के रूप में मिला। यही भाग्य का फेर होता है। सोनी दुर्गिला और कनकवती, चन्द्रवती, शीलवती, वेदवती और गुणमंजरी—पाँचों पत्नियों के साथ देवदत्त अपने पिता के भवन में रहने लगा। जहाजों का माल उसने गोदामों में भरवाया। उसका व्यापार अच्छी तरह चलने लगा। पुराने नौकर-चाकर लौट आये। कुछ नये भी रखे। राजा की अनुमति लेकर देवदत्त ने राजगृह में यह घोषणा करा दी कि मेरे पिता रत्नदत्त के ऊपर जिन किसी

का ऋण हो, वह मुझसे ले जाए और जिस पर मेरे पिता का ऋण हो, वह मुझे दे जाय। अब तो देवदत्त के पास काफी धन आने लगा।

भाग्य की लीला बड़ी विचित्र होती है। देवदत्त को बिना प्रयास और भाग-दौड़ के अपने माता-पिता का भी पता चल गया। दानपुर नामक किसी नगर के व्यापारी राजगृह आये और व्यापारिक कार्य से वे देवदत्त से मिले तो बातो ही बातो मे पता चल गया कि देवदत्त के माता-पिता दानपुर मे किसी सेठ की नौकरी करते हैं। देवदत्त उन्हे ले आया। अब इस परिवार मे किसी तरह का अभाव नही रहा था। गंगदत्त देवदत्त जैसे पुत्र को पाकर बहुत सुखी था और सेठानी गंगादेवी तथा छोटी बहन दुर्गावती—दोनो पाँचो पुत्र-वधुओ को पाकर फूली नही समाती थी।

बहुत समय यो ही बीता। काल किसी को नही छोड़ता। देवदत्त के माता-पिता और मौसी—तीनो सरक्षक परलोकवासी हो गए। अब वह था और उसकी पाँचो पत्नियाँ थी।

एक बार सुमतिसागर मुनि राजगृह में आये। वे गोचरी के लिए देवदत्त के गृहद्वार पर पहुँचे। देवदत्त ने उन्हें आहार नहीं बहराया और पत्नियों सहित देवदत्त ने मुनि से घृणा की और कहा—

"यह मुण्डित मुनि कितना मलिन है। देह से पसीने की दुर्गन्ध आती है।"

मुनि भिक्षा लिए बिना लौट गए। कुछ ही दिनों बाद देवदत्त अपनी पत्नियों सहित मृत्यु को प्राप्त हुआ और उसका जन्म एक चाण्डाल के घर हुआ, देवदत्त चाण्डाल पुत्र बना और उसकी पूर्वभव की पाँचों पत्नियाँ उसकी सगी बहनें—चाण्डाल-पुत्रियाँ बनीं। कालान्तर में छहों भाई-बहन बड़े हुए।

मुनि सुमतिसागर को अब केवलज्ञान प्राप्त हो चुका था। संयोग से वे चाण्डाल-पुत्र और पुत्रियों से मिले तो उनका पूर्वभव जानकर उन्हें बताया—

"भव्य जीवो! पूर्वभव में तुम उच्च श्रेष्ठि-कुल में जन्मे थे। तुमने न तो मुझे आहार-दान दिया, उलटे तुमने घृणा की थी। इसी कारण तुम चाण्डाल घर में जन्मे हो। अब भी साधना कर लो कि

पूर्वभव मे तुम पति-पत्नियाँ थे और इस भव मे भाई-बहन हो।"

अपना पूर्वभव सुनकर चाण्डाल-सन्तानो के रोंगटे खड़े हो गए। उन्होंने मुनि से धर्म ग्रहण किया और श्रावक बने। अब वे पात्रदान करने में कभी पीछे नही रहते थे और निष्ठापूर्वक श्रावकव्रतो का पालन करते थे। कालान्तर मे मृत्यु को प्राप्त कर ये छहों प्राणी देवलोक को प्राप्त हुए।

× × ×

विराटनगर मे जुड़े समवसरण मे मुनि धर्मघोष पुण्यपाल को उसका पूर्वभव सुना रहे थे। कनकमंजरी, सौभाग्यमंजरी, तिलकमंजरी, कुसुमश्री और पुष्पवती—पुण्यपाल की पाँचो पत्नियाँ भी समवसरण मे बैठी थी। कनकसेन, सुभगसेन, तिलकसेन, कुसुमसेन और पुष्पकुमार—ये पाँचो पुत्र भी अपनी-अपनी पत्नियो के साथ बैठे थे। विराटनगर के नर-नारी तो हजारो की संख्या मे थे ही। पुण्यपाल का पूर्वभव सुनाने के बाद मुनि धर्मघोष ने उससे कहा—

"राजन्! पूर्वभव मे तुम्ही देवदत्त थे। इन्दुमती, चन्द्रवती, शीलवती, वेदवती और गुणमजरी तुम्हारी पाँचो पत्नियाँ आज भी तुम्हारी पाँचो पत्नियाँ है और बीच के एक भव मे बहनें बनी। धर्म का चमत्कार अब तो तुमने देख ही लिया। पात्रदान के कारण तुम पाँचो राज्यो के राजा बने हो। देवागना जैसी पाँच पत्नियो के पति और देवकुमार जैसे पाँच पुत्रो के पिता बने हो।

"हे राजन्! धर्म की उपेक्षा का प्रभाव इस जन्म मे भी शेष रहा है, सो तुम्हे कुछ कष्ट भी उठाने पड़े है। पर तुम्हारे पुण्यो ने तुम्हें हर कदम पर सम्हाला है।

अपना पूर्वभव सुनकर राजा पुण्यपाल और उसकी रानियो ने एक गहरा नि श्वास छोड़ा तथा पुण्यपाल ने कहा—

"हे मुने ! अब तो हमें अपने चरणों की शरण दीजिए। अब तो कर्मक्षय करने की प्रबल इच्छा है।"

"जैसा करने में तुम्हारी आत्मा सुख माने वैसा करो।" मुनि ने कहा—"लेकिन धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो।"

पुण्यपाल को दीक्षा की अनुमति मिल गई। उनकी पाँचों पत्नियों ने भी दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। पुण्यपाल ने अपने पाँचों राज्य पुत्रों को दे दिये। कनकसेन को विराटनगर के राज-सिंहासन पर बैठाया, गुणसेन को श्रीपुर का राज्य दिया, जो पूर्व में उनके नाना शूरसेन का राज्य था। सिंहलपुर का राज्य सिंहल-सेन को मिला। रत्नपुर का राज्य गुणश्री के पुत्र पुष्पकुमार को दिया। मंगलपुर का राज्य कुसुमश्री के पुत्र कुसुमसेन को दिया।

पुत्रों को राज्य देकर पुण्यपाल ने चारित्र ग्रहण किया और उनकी पत्नी भी साध्वियाँ बनकर साध्वी संघ में सम्मिलित हो गई। कुछ दिन विराटनगर में रहकर दीक्षार्थियों के गुरु धर्मघोष के साथ अन्यत्र विहार किया।

इधर पुण्यपाल के पाँचों पुत्र क्षात्रधर्म का पालन करते हुए न्याय-नीति से अपने-अपने राज्यों की प्रजा का पालन कर रहे थे। राज्य देते समय उनके पिता ने जो शिक्षाएँ दी थीं, वे उनका बहुत ध्यान रखते थे।

राजर्षि पुण्यपाल ने गुरु से आज्ञा लेकर एकाकी विहार किया। घोर तपश्चर्या करके वे अपने कर्मों का क्षय कर रहे थे। उन्होंने एक दिन केवलज्ञान प्राप्त किया। देवों ने उनका केवल महोत्सव मनाया। फिर प्राण त्याग कर केवली मुनि ने मोक्ष पद प्राप्त किया।

पाँचो साध्वियो ने तपश्चर्या करते हुए पण्डितमरण प्राप्त किया और देवलोक मे गई। अगले भव मे ये जीव पुन मनुष्य भव प्राप्त करके चारित्र पालन कर शिवपुर के अधिकारी बनेंगे। भव्य जीव इसी तरह जन्म-जन्मान्तरो मे भटकने के बाद अन्त मे मुक्ति-वधू का वरण करता है। यही पुण्यपाल ने किया था।

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

१-६ **कर्मग्रन्थ [भाग १—६] सम्पूर्ण सेट :**

जैन दर्शन की मूल कुंजी है—कर्म सिद्धान्त। कर्म सिद्धान्त को सम्यक्रूप से समझने पर ही जैन दर्शन का हार्द समझा जा सकता है। कर्म सिद्धान्त का सुन्दर अत्यन्त प्रामाणिक विवेचन पढ़िए—

कर्मग्रन्थ—

मूल रचयिता : श्रीमद् देवेन्द्रसूरि
व्याख्याकार : श्री मरुधर केसरी मिश्रीमलजी महाराज
सम्पादक : श्रीचन्द सुराना : देवकुमार जैन

७ **जैनधर्म में तप स्वरूप और विश्लेषण :**

तप के सर्वांगीण स्वरूप पर शास्त्रीय विवेचन। तप सम्बन्धी अनेक चित्र।

८ पंच संग्रह भाग १ से १०

९-१६ **प्रवचन साहित्य—(अप्राप्य)**

१ प्रवचन प्रभा	२ धवल ज्ञान धारा
३ जीवन ज्योति	४. प्रवचन सुधा
५ साधना के पथ पर	६ मिश्री की डलियां
७ मिश्रता की मणियाँ	८. मिश्री विचार वाटिका

१७-२४ **उपदेश साहित्य—**

सप्त व्यसन पर आठ महत्वपूर्ण लघु पुस्तिकाएं
जीवन सुधार (संयुक्त जिल्द)

१५-२४ सुधर्म प्रवचन माला (जैन धर्म पर १० पुस्तकें)

१५-२७ **काव्य साहित्य**

जैन रामयशोरसायन

जैन पाडव यशोरसायन
(नवीन परिवर्द्धित तुलनात्मक भूमिका व परिशिष्ट युक्त
तकदीर की तस्वीर

३८-४७ उपन्यास व कहानी-साहित्य—

साझ सवेरा	किस्मत का खिलाड़ी
भाग्य क्रीड़ा	बीज और वृक्ष
धनुष और बाण	फूल और पाषाण
एक म्यान : दो तलवार	शील सौरभ
भविष्य का भानु	तकदीर की तस्वीर

अन्य साहित्य :

४८. विश्व बधु महावीर (अप्राप्य)
४९. तीर्थंकर महावीर " "
५० संकल्प और साधना के धनी :
श्रीमरुधर केसरी मिश्रीमलजी महाराज
५१. दशवैकालिक सूत्र (पद्यानुवाद)
५२. श्रमणकुलतिलक आचार्य श्री रघुनाथजी महाराज
५३ मिश्री विचार वाटिका (प्रवचन)—प्रेम में
५४. मिश्री काव्य कल्लोल (कविता-भजन सग्रह)
५५. (दो भाग में—अमृत सागर)
५६. अमृत नवशति
५७. जीवन निर्माता के तीन सूत्र
५८. जीवन निर्माता के तीन सूत्र (Eng)
५९. तेपोज्योतिर्पेंतालीस

सम्पर्क करें—

श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार
पो० ब्यावर (राजस्थान)